श्रीवीतरागाय नमः।

सुदर्शन-चरित।

मूल ग्रन्थकर्त्ता—

श्रीमत्सकलकीर्ति भट्टारक।

हिन्दी लेखक—

उदयलाल काशलीवाल।

प्रकाशक—

हिन्दी-जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय।

प्रथम संस्करण।

कीमत ||-) आने।
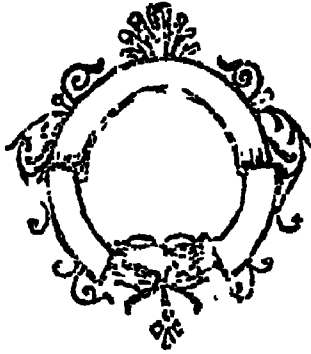
विषयसूची।

अध्याय.		पृष्ठ.
१	मंगल और प्रस्तावना	१
१	सुदर्शनका जन्म	४
२	सुदर्शनकी युवावस्था	१३
३	सुदर्शन संकटमें	२४
४	सुदर्शनका धर्म-श्रवण	४२
५	सुदर्शन और मनोरमाके भव	५३
६	सुदर्शनकी तपस्या	६६
७	संकटपर विजय	८१
८	सुदर्शनका निर्वाण-गमन	९३

तच्छिरोहननायैकः सेवकः सहसाऽशुभात् ।
तस्याङ्गे जितकन्दर्पे तीक्ष्ण खड्गं न्यपातयत् ॥
अहो तस्य महाशील-प्रभावेनासिरूर्जितः ।
मुक्ताफलमयो दिव्यो हारः कण्ठे ऽभवन्महान् ॥

—सुदर्शन-चरित ।

श्रीवीतरागाय नमः ।

श्रीसकलकीर्तिआचार्यकृत

सुदर्शन-चरित ।

अथवा

पंचनमस्कारमंत्र-माहात्म्य ।

मंगल और प्रस्तावना ।

श्री वर्द्धमान भगवान्‌को नमस्कार है, जो धर्मतीर्थके चलानेवाले और तीन लोकके स्वामी हैं, तथा संसारके बन्धु और अनन्तसुख-मय हैं । और कर्मोंका नाशकर जिन्होंने अविनाशी सुखका स्थान मोक्ष प्राप्त कर लिया है ।

श्रीआदिनाथ भगवान्‌को नमस्कार है । धर्म ही जिनका आत्मा है, जो बैलके चिह्नसे युक्त हैं और युगकी आदिमें पवित्र धर्मतीर्थके प्रवर्त्तक हुए हैं ।

इनके सिवा और जो तीर्थंकर हैं उन्हें भी मैं नमस्कार करता हूँ । वे संसारके जीवोंका उपकार करनेवाले और सबके हितू हैं,

वे गौतमादि गणधर ऋषि मेरे कल्याणके बढ़ानेवाले हों, जो सब ऋद्धि और अंगशास्त्ररूपी समुद्रके पार पहुँच चुके हैं—जो बड़े भारी सिद्ध-योगी और विद्वान् हैं तथा बाह्य और अन्तरंग परिग्रह रहित हैं। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

उन गुरुओंके चरण कमलोंको नमस्कार है, जिनकी कृपासे मुझे उन सरीखे गुणोंकी प्राप्ति हो तथा जो परिग्रह रहित और उत्तम गुणोंके धारक हैं।

जिनदेव, गुरु और शास्त्रकी मैंने वन्दना-स्तुति की और जिनकी स्वर्गके देव और चक्रवर्त्ती आदि महा पुरुष वन्दना-स्तुति करते हैं वे सब सुखोंके देनेवाले या संसारके जीवमात्रको सुखी करनेवाले देव, गुरु और शास्त्र मेरे इस आरंभ किये ग्रन्थमें आनेवाले विघ्नोंको नाश करें, सुख दें और इस शुभ कामको पूरा करें।

वैश्यकुल-भूषण श्रीवर्धमानदेवके कुलरूपी आकाशके जो सूर्य हुए, सब पदार्थोंके जाननेवाले पाँचवें अन्तःकृतकेवली हुए, सुन्दर शरीरधारी कामदेव हुए और घोरतर उपसर्ग जीतकर जिन्होंने संसार पूज्यता प्राप्त की उन सुदर्शन मुनिराजका यह पवित्र और भव्यजनोंको सुख देनेवाला धार्मिक-भावपूर्ण चरित्र लिखा जाता है। इससे सबका हित होगा। मैं जो इस चरितको लिखता हूँ वह इसलिए कि इसके द्वारा स्वयं मेरा और भव्यजनोंका कल्याण हो और पंचनमस्कारमंत्रका प्रभाव विस्तृत हो। इसे सुनकर या पढ़कर भव्यजनोंकी पंच परमेष्ठिमें श्रद्धा पैदा होगी, ब्रह्मचर्य आदि पवित्र व्रतोंके धारण करनेकी भावना होगी, संसार-विषय-भोगोंसे उदासीनता होगी और वैराग्य बढ़ेगा।

सुदर्शनका जन्म।

जम्बूद्वीप एक प्रसिद्ध और मनोहर द्वीप है। उसे लवणसमुद्र चारों ओरसे घेरे हुए है। अच्छे धर्मात्मा और पुण्यवानोंका वह निवास है। उसके ठीक बीचमें सुमेरु पर्वत है। वह ऐसा जान पड़ता है मानों जम्बूद्वीपकी नाभि है। सुमेरु एक लाख योजन ऊँचा और सुन्दर बाग-बगीचे तथा जिनमन्दिरोंसे शोभित है। उससे दक्षिणकी ओर भारतवर्ष बड़ी सुन्दरता धारण किये हुए है। रूपाचल नामके पर्वतको तीन ओरसे घेरकर बहनेवाली नदीसे वह ऐसा जान पड़ता है मानों उसने धनुषबाण चढ़ा रक्खा हो। उसके बीचमें आर्यखण्ड बसा हुआ है। वह आर्य-पुरुषोंसे परिपूर्ण है, धर्मका खजाना है और स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्तिका कारण है।

उसमें अंगदेश नामका एक सुन्दर और प्रसिद्ध देश है। वह धर्म और सुखका स्थान है, अनेक छोटे-मोटे गाँव और बाग-बगीचोंसे शोभित है। वहाँके सभी गाँव, नगर, पुर, शहर, देश, धर्मात्मा पुरुषों और बड़े ऊँचे जिनमन्दिरोंसे युक्त हैं। वहाँ मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओंके संघ धर्मोपदेशके लिए सदा विहार करते हैं और भव्यजनोंको मोक्षका मार्ग बतलाते हैं। वहाँके बाग फल-फूलोंसे सुन्दरता धारण किये हुए वृक्षोंसे युक्त हैं। वे देखनेवालोंका मन फौरन अपनी

और आकर्षित कर लेते हैं। उनकी छायामें बैठकर लोग गर्मीका कष्ट दूरकर बड़ा शान्तिलाभ करते हैं। वे चारों ओर बड़ी बड़ी दूरतककी जगहमें विस्तृत हैं। वे ऐसे जान पड़ते हैं जैसे योगी हों। क्योंकि योगीलोग भी जीवोंका संसार-ताप मिटाकर शान्ति देते हैं, पवित्र होते हैं और रत्नत्रयरूप फलोंसे युक्त हैं। मुनियोंका मन जैसा निर्मल होता है ठीक ऐसे ही निर्मल जलके भरे वहाँके सरोवर, कुए, बावड़ियाँ हैं। मुनियोंका मन पाप-मलका नाश करनेवाला है, ये शरीरकी मलिनता दूर करते हैं। मुनियोंका मन संसारके विषय-भोगोंकी तृष्णासे रहित हैं और वे प्यासेकी प्यास बुझाते हैं।

वहाँके कितने धर्मात्मा श्रावक रत्नत्रय धारणकर तप द्वारा निर्वाण लाभ करते हैं, कितने ग्रैवेयक जाते हैं, कितने सौधर्मादि स्वर्गोंमें जाते हैं, कितने सरल परिणामी दान देकर भोगभूमि लाभ करते हैं और कितने देव-गुरु-शास्त्रकी पूजा द्वारा पुण्य उत्पन्न कर इन्द्र या तीर्थंकरोंके वैभवको प्राप्त करते हैं। वहाँ उत्पन्न हुए लोग जब अपने पवित्र आचार-विचारों द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थोंको प्राप्त कर सकते हैं तब वहाँका और अधिक वर्णन क्या हो सकता है? अंगदेश इस प्रकार धन-दौलत, धर्म-कर्म, गुण-गौरव आदि सभी उत्तम बातोंसे परिपूर्ण है।

जिस समयकी यह कथा है उस समय अंगदेशकी राजधानी चम्पानगरी थी। वह बड़ी सुन्दर और गुणी, धनी, धर्मात्मा पुरुषोंसे युक्त थी। बड़े ऊँचे ऊँचे कोटों, दरवाजों, बावड़ियों, खाइयों और

शूरवीरोंसे वह शोभित थी और इसी लिए शत्रुलोगोंका उसमें प्रवेश न था। वह इन बातोंसे अयोध्या जैसी थी। अत्यन्त विशाल, भव्य, जिनभगवान्के मन्दिरोंसे उसने जो मनोहरता धारण कर रक्खी थी उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो वह धर्मकी सुन्दर खान है। वे जिनमन्दिर ऊँचे शिखरों पर फहराती हुई ध्वजाओंके समूहसे, सोनेकी बनी हुई प्रतिमाओंसे, भामण्डल-छत्र-चवँर आदि उपकरणोंसे, बाजोंके मन मोहनेवाले सुन्दर शब्दोंसे और दर्शनोंके लिए आने-जानेवाले भव्यजनोंसे उत्सव और आनन्दमय हो रहे थे। वहाँ लोगोंको धर्मसे इतना प्रेम था—वे इतने धर्मात्मा थे कि सवेरे उठते ही सबसे पहले सामायिक करते थे। इसके बाद नित्य क्रियाओंसे छुट्टी पाकर वे भक्तिसे जिनभगवान्की पूजा करते, स्वाध्याय करते और फिर घरपर आकर दानके लिए पात्रोंका निरीक्षण करते। इसी प्रकार साँझको सामायिकादि क्रियाँयें करते, परमेष्ठिका ध्यान करते, वन्दना-स्तुति करते। यह उनकी शुभचर्या थी। इसके पालनेमें वे कभी आलस या प्रमाद नहीं करते थे। वे मिथ्यात्वसे सदा दूर रहते थे। साधु-महात्माओंके वे बड़े सेवक थे। धर्मसे उन्हें अत्यन्त प्रेम था। वे बड़े पुण्यवान् थे, ज्ञानी थे, दानी थे, धनी थे, स्वरूपवान् थे, सुखी थे, और सम्यग्दर्शन, व्रत, शील आदि गुणोंसे भूपित थे। वे जब अपने उन्नत और सुन्दर महलोंपर अपने समान ही सुन्दर और गुणवाली अपनी स्त्रियोंके साथ बैठते तब ऐसा जान पड़ता था मानो स्वर्गोंके देवगण अपनी देवाङ्गनाओंके साथ बैठे हैं।

चम्पानगरीकी प्रजा बड़ी सौभाग्यवती थी, जो जैसी नगरी सुन्दर और सब गुणोंसे परिपूर्ण थी वैसे ही गुणी और सब राजोंके शिरोमणि राजा भी उसे पुण्यसे मिल गये। उनका नाम धात्रीवाहन था। वे बड़े धर्मात्मा थे, दानी थे, प्रतापी थे और शीलवान् थे। राजनीतिके वे बड़े धुरंधर विद्वान् थे। प्रजापर उनका अत्यन्त प्रेम था। अपने इन गुणोंसे वे चक्रवर्त्तीकी तरह तेजस्वी जान पड़ते थे। उनकी रानीका नाम अभयमती था। पट्टरानीका उच्च सम्मान इसे ही प्राप्त था। यह बड़ी सुन्दरी और गुणवती थी।

चम्पानगरीके राजसेठका सम्मान वृषभदासको प्राप्त था। वृषभदास बड़े धर्मात्मा और पवित्र रत्नत्रय-व्रत-संयम-शील आदि गुणोंके धारक थे। बड़े स्वरूपवान् थे। देव-गुरुके वे बड़े भक्त थे और सदाचारी थे। जिनधर्म पर उनका बड़ा प्रेम था। इन्हीं गुणोंके कारण सारी चम्पानगरीमें उनकी बड़ी मान-मर्यादा थी। उनकी स्त्रीका नाम जिनमती था। वह बड़ी सुन्दरी थी—देवाङ्गनायें उसके रूपको देखकर शर्माती थीं। वृषभदासके समान यह भी जिनभगवान्की पूर्ण भक्त थी, महासती थी और पुण्यवती थी। वृषभदास अपने समान ही गुणवती स्त्रीको पाकर खूब सुखी हुए।

एक दिन जिनमती अपने शय्यागृहमें पलंगपर सुखकी नींद सोई हुई थी। पिछली रातका समय था। इस समय उसने एक शुभ स्वप्न देखा। उसमें उसने फलोंसे युक्त सुदर्शन नामक

कल्पवृक्ष और देवोंके महलको, विशाल समुद्र और बढ़ती हुई प्रचण्ड अग्निको देखा। सवेरे जब वह उठी और स्वप्नका उसे स्मरण हुआ तब वह बड़ी आनन्दित हुई। धर्मप्राप्तिके लिए पहले उसने सामायिकादि क्रियायें कीं। इसके बाद वह खूब गहने-गाँठे और सुन्दर वस्त्रोंको पहर कर अपने स्वामीके पास पहुँची। बड़े विनयके साथ उसने वृषभ-दाससे अपने स्वप्नका हाल कहा। उस शुभ स्वप्नको सुनकर उन्हें भी बड़ा आनन्द हुआ। सेठने तब जिनमतीसे कहा—प्रिये, चलो, जिनमंदिर चलकर ज्ञानी मुनिराजसे इस स्वप्नका हाल पूछें। क्योंकि इसका फल जैसा मुनिराज कह सकेंगे वैसा कोई नहीं कह सकता। यह कहकर वृषभदास जिनमतीको साथ लिये जिन-मंदिर पहुँचे। उन्हें स्वप्नका हाल जाननेकी बड़ी उत्कंठा लगी थी। पहले ही उन्होंने धर्मप्राप्तिके लिए भक्तिके साथ भगवान्की पूजा-स्तुति और वन्दना की। इससे उन्हें महान् पुण्यका बंध हुआ। इसके बाद वे तीन ज्ञान-धारी श्रीसुगुप्ति मुनिराजके पास पहुँचे। उनकी भी पूजा-स्तुति कर उन्होंने उनसे स्वप्नका फल पूछा। योगीने अनुग्रह कर सेठसे कहा—सेठ महाशय, ध्यानसे सुनिए। मैं आपको स्वप्नका फल कहता हूँ। स्वप्नमें पहले ही जो सुदर्शन मेरु देखा है उससे आपको एक पुत्र-रत्नकी प्राप्ति होगी। वह बड़ा साहसी और अत्यन्त स्वरूपवान्-कामदेव होगा। अपने गुणोंसे वह खूब मान-मर्यादा लाभ करेगा। कल्पवृक्षके देखनेसे वह बड़ा धनी, दानी, भोगी और सबकी आशाओंको पूर्ण करनेवाला होगा और जो

स्वप्नमें देवोंका महल देखा है उससे वह देवों द्वारा पूज्य होगा। अन्तमें अग्नि देखी गई है उसके फलसे वह सब कर्मोंका नाशकर मोक्षलाभ करेगा। सुनिए—ये सब शुभ स्वप्न हैं और आपके होनेवाले पुत्रके गुणोंके सूचक हैं। स्वप्नका फल सुनकर सेठ बड़े खुश हुए। इसके बाद वे उन मुनिराजको नमस्कार कर प्रियाके साथ अपने महल लौट आये।

इस घटनाके कुछ ही दिन बाद जिनमतीके गर्भ रहा। उसे देख बन्धु-बान्धवोंको बड़ी खुशी हुई। वह पवित्र गर्भ ज्यों ज्यों बढ़ने लगा त्यों त्यों कुटुम्बियोंको जिनमतीपर बड़ा प्रेम होने लगा। इस गर्भसे जिनमती ऐसी शोभने लगी मानों वह रत्नकी खान है। जब नौ महीने पूरे हुए तब अच्छे मुहूर्त्तमें पौष सुदी ४ को सुखपूर्वक उसने पुत्र-रत्न प्रसव किया। उसके प्रचण्ड तेजने सूर्यके तेजको दबा दिया। उसके शरीरकी कान्तिने चन्द्रमाको जीत लिया। वह सुन्दर इतना था कि उसकी उपमा देनेके लिए संसारमें कोई पदार्थ ही न रहा। वृषभदास तब उसी समय अपने बन्धुओंको लिये जिनमंदिर पहुँचा। वहाँ उसने बड़े वैभवके साथ सुखप्राप्तिके लिए जिनभगवान्‌की पूजा की, जो सब सुखोंकी देनेवाली है। गरीब, असहाय, अनाथोंको उनकी इच्छाके अनुसार उसने दान दिया; खूब गीत-नृत्यादि उत्सव करवाया। घरोंपर ध्वजा, तोरण बाँधे गये। इत्यादि बड़े ठाट-बाटसे पुत्रका जन्मोत्सव मनाया गया।

कुछ दिनों बाद सेठने पुत्रका नामकरण संस्कार किया। वह देखनेमें बड़ा सुन्दर था, इसलिए उसका नाम भी सुदर्शन

रक्खा गया। सुदर्शन अपने योग्य खान-पानसे दिनों दिन दूजके चन्द्रमाकी तरह बढ़ने लगा। उसकी वह मधुर हँसी, तोतली बोली आदि स्वाभाविक बाल-विनोदको देखकर परिवारके लोगोंको अत्यन्त आनन्द होता था। उसके जैसे तो छोटे-छोटे सुन्दर हाथ-पाँव और उनमें वैसे ही छोटे-छोटे आभूषण पहराये गये, उनसे वह बड़ा ही सुन्दर दिखता था। उसकी बाल-बुद्धिकी चंचलता देखकर सबको बड़ी प्रसन्नता होती थी।

एक और सेठ इसी चम्पापुरीमें रहता था। उसका नाम सागरदत्त था। वह भी बड़ा बुद्धिवान् और धनी था। उसकी स्त्रीका नाम सागरसेना था। वृषभदास और सागरदत्तकी परस्परमें गाढ़ी मित्रता थी। इसी मित्रताके वश होकर एक दिन सागरदत्तने वृषभदाससे कहा—प्रियमित्र, मेरी प्रियाके जो सन्तान होगी और वह यदि लड़की हुई तो मैं उसका व्याह आपके सुदर्शनके साथ ही करूँगा। यह सम्बन्ध अपने लिए बड़ा सुखका कारण होगा।

भावना निष्फल नहीं जाती, इस उक्तिके अनुसार सागरदत्तके बड़ी सुन्दरी और गुणवती लड़की ही हुई। उसका नाम रक्खा गया मनोरमा। वह भी दिनोंदिन बढ़ने लगी।

इधर सुदर्शनने मुग्धावस्थाको छोड़कर कुमारावस्थामें पाँव रक्खा। रूपसे, तेजसे, शरीरकी सुन्दरता और गठनसे वह देवकुमारसा दिखने लगा। उसे सुन्दरतामें कामदेवसे भी बढ़कर देखकर वृषभदासने बड़े वैभवके साथ देव-गुरु-शास्त्रकी पूजा की और इसी शुभ दिनमें उसे गुरुके पास पढ़नेको भेज दिया।

सुदर्शन भाग्यशाली और बुद्धिवान् था। इसलिए वह थोड़े ही दिनोंमें शास्त्ररूपी समुद्रके पारको प्राप्त हो गया—अच्छा विद्वान् हो गया। सुदर्शनकी पुरोहित-पुत्र कपिलके साथ मित्रता हो गई। सुदर्शन उसे जी-जानेसे चाहने लगा। कपिलको भी एक पलभर सुदर्शनको न देखे चैन न पड़ता था। वह सदा उसके साथ रहा करता था। कपिल हृदयका भी बड़ा पवित्र था।

सुदर्शनने अब कुमार अवस्थाको छोड़कर जवानीमें पाँव रक्खा। रत्नोंके आभूषणों और फूलोंकी मालाओंने उसकी अपूर्व शोभा बढ़ा दी। नेत्रोंने चंचलता और प्रसन्नता धारण की। मुख चन्द्रमाकी तरह शोभा देने लगा। चौड़ा ललाट कान्तिसे दिप उठा। मोतियोंके हारोंने गले और छातिकी शोभामें और भी सुन्दरता लादी। अँगूठी, कड़े, पोंची आदि आभूषणोंसे हाथ कृतार्थ हुए। रत्नोंकी करधनीसे कमर प्रकाशित हो उठी। सुदर्शनकी जाँघे केलेके स्तंभ समान कोमल और सुन्दर थी। उसका सारा शरीर कान्तिसे दिप रहा था। उसके चरण-कमल नखरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे बड़ी सुन्दरता धारण किये थे। वह सदा बहुमूल्य और सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे, चन्दन और सुगन्धित फूल-मालाओंसे सजा रहता था। इस प्रकार उसे शारीरिक सम्पत्ति और धन-वैभवका मनचाहा सुख तो प्राप्त था ही पर इसके साथ ही उसे धार्मिक सम्पत्ति भी, जो वास्तवमें सुखकी कारण है, प्राप्त थी। वह बड़ा धर्मात्मा था, बुद्धिवान् था, विचारशील था, साहसी था, चतुर था, विवेकी था, विनयी था, देव-गुरु-शास्त्रका सच्चा भक्त था,

बड़ा बोलनेवाला था, स्वरूपवान् था, गुणी था और हृदयका बड़ा पवित्र था । एक महापुरुषमें जो लक्षण होने चाहिएँ, वे यशस्विता, तेजस्विता आदि प्रायः सभी गुण सुदर्शनको प्राप्त थे । इस प्रकार युवावस्थाको प्राप्त होकर अपने गुणों द्वारा सुदर्शन देवकुमारों जैसा शोभने लगा ।

यह सब पुण्यका प्रभाव है कि जो सुदर्शन कामदेव और गुणोंका समुद्र हुआ; और जिसकी सुन्दरताकी समानता संसारकी कोई वस्तु नहीं कर सकी। इसे जो देख पाता उसीकी आँखोंमें यह बस जाता था—सबको बड़ा प्रिय लगता था। इस प्रकार कुमार अवस्थाके योग्य सुखोंको इसने खूब भोगा । तब जो तत्वज्ञ हैं—धर्मका प्रभाव जानते हैं उन्हें उचित है कि वे भी धर्मका सेवन करें । क्योंकि धर्म ही धर्मप्राप्तिका कारण और सुखकी खान है । और इसीलिए धर्मात्मा जन जिनधर्मका आश्रय लेते हैं। धर्मसे सब गुण प्राप्त होते हैं। धर्मको छोड़कर और कोई ऐसी वस्तु नहीं जो जीवका हित कर सके। ऐसे उच्च धर्मका मूल है दया। उसमें मैं अपने मनको लगाता हूँ—एकाग्र करता हूँ । इस धर्मको मेरा नमस्कार है । वह मेरे पापोंका नाश करे ।

सुदर्शनकी युवावस्था।

जो सदा जीवोंका कल्याण—हित करनेवाले हैं और संसारके सर्वोत्तम शरण हैं, उन अर्हन्त, सिद्ध, साधु और सर्वज्ञ-प्रणीत धर्मको मेरा नमस्कार है।

एक दिन सुदर्शन अपने मित्रोंको साथ लिये शहरमें घूमनेको निकला। वह हँसी-विनोद करता हुआ जा रहा था। उसकी खूबसूरतीको देखकर लोग मुग्ध होते थे। इसी समय मनोरमा सोलहों शृंगार किये अपनी सखी-सहलियोंके साथ जिन-मन्दिरको जा रही थी। सुदर्शनने उसे देखा—उसकी रूपसुधाका पान किया। उसे जान पड़ा कि किसी गुप्त शक्तिने उसके हृदयको बड़े जोरसे पकड़ लिया। वह छूटनेकी कोशिश करता है पर छूट नहीं पाता—मनोरमा पर वह अत्यन्त मोहित हो गया। वह वहाँसे आगे न बढ़कर वापिस घरकी ओर लौटा। उसकी बे-चैन अवस्था बढ़ती ही जाती थी। घर जाते ही वह बिछौनेपर जा पड़ा। उसकी यह दशा देखकर उसके माता-पिताने उससे पूछा—बेटा, एकाएक तेरी ऐसी बुरी हालत क्यों हो गई? सुदर्शन लज्जाके मारे उन्हें कुछ उत्तर न दे सका। तब उन्होंने उसके मित्र कपिलसे पूछा। कपिल बोला—पिताजी, हम लोग शहरमें घूमते हुए चले जा रहे थे। इसी समय अपने सागरदत्त सेठकी लड़की मनोरमा मन्दिर जा रही

थी। सुदर्शनकी उसपर नजर पड़ गई। जान पड़ता है उसे देखकर ही इसकी यह दशा हो गई है। कपिल द्वारा यह हाल सुनकर वृषभदासको बड़ी खुशी हुई। इसलिए कि मनोरमा एक तो अपने मित्रकी ही लड़की और उसपर भी सागरदत्त स्वयं सुदर्शनके साथ उसका व्याह करनेके लिए उसके जन्म न होनेके पहले ही कह चुका है। तब पुत्रके सुखके लिए वे स्वयं सागरदत्तके घर जानेको तैयार ही हुए थे कि इतनेमें मनोरमाका पिता उनके घरपर आ उपस्थित हुआ। कारण इधर जैसे सुदर्शन मनोरमाको देखकर कामसे पीड़ित हुआ, उधर मनोरमाकी भी यही दशा हुई। सुदर्शनको देखकर जो कामाग्नि धधकी वह उसके हृदय और शरीरको बड़े प्रचण्डरूपसे जलाने लगी। कामने मानों उसे ग्रास बना लिया। वह घर आकर अपनी सेजपर जा सोई। सुदर्शनका वियोग उसे अत्यन्त कष्ट देने लगा। उसकी यह दशा देखकर उसके पिताने उसकी सखी-सहलियोंसे इसका कारण पूछा। सुदर्शनपर मनोरमाका प्रेम हुआ सुनकर सागरदत्त उसके घर पहुँचा। सुदर्शनका पिता तो जानेके लिए तैयार खड़े ही थे कि इसी समय एकाएक सागरदत्तको अपने यहीं आया देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सागरदत्तका उचित आदर-सत्कार कर उसे एक अच्छी जगह बैठाया और आप भी बैठे। इसके बाद बड़े नम्र शब्दोंमें उन्होंने सागरदत्तसे पूछा--हाँ आप वह कारण बतलाइए जिससे कि मेरे क्षुद्र गृहको अपने चरणोंसे पवित्र कर आपने मेरा सौभाग्य बढ़ाया। सागरदत्तने तब मधुर मधुर हँसते हुए कहा—महाशय, मुझे इस बातकी आज

अत्यन्त खुशी है कि मेरा किया संकल्प आज पूरा होता है। आपको स्मरण होगा कि मैंने आपसे कहा था कि मैं अपनी लड़कीकी शादी आपके पुत्रके साथ करूँगा। वह समय उपस्थित है और खास इसी लिए मैं आज आपसे प्रार्थना करने आया हूँ। आशा है, नहीं विश्वास है--आप मेरी नम्र प्रार्थना स्वीकार करेंगे। यह सुनकर सुदर्शनके पिताने कहा—प्रियमित्र, जैसा मेरा सुदर्शन सुन्दर और गुणी, वैसी ही आपकी मनोरमा सुन्दरी और विदुषी, भला तब कहिए इस मणि-कांचन संयोगको कौन न चाहेगा। इसके बाद ही उन्होंने श्रीधर नामके एक अच्छे ज्योतिषी विद्वान्को विवाहका शुभ दिन पूछनेको बुलाया। ज्योतिषी महाशयने तब अपने पोथी-पाने देख कर व्याहका शुभ दिन बतलाया—वैसाख सुदी पंचमी। वही दिन निश्चय कर वृषभदास और सागरदत्तने व्याहका काम-काज भी शुरू कर दिया। दोनोंके यहाँ अच्छे मंडप तैयार किये गये। सुबह और शामको नौबतें झड़ने लगीं। खूब उत्सव किया गया। जो दिन व्याहके लिए निश्चित था, उस दिन पहले ही दोनों सेठोंने जिनमन्दिर जाकर बड़े ठाट-बाटसे जिनभगवान्की अभिषेकपूर्वक पूजा की। इसलिए कि उनका विवाहोत्सव निर्विघ्न पूरा हो—कोई प्रकारका विघ्न न आवे और सब सुखोंकी प्राप्ति हो। इसके बाद उन्होंने अपने बन्धु-बान्धवोंको बहुमूल्य वस्त्र भूषण आदि भेटकर उनका उचित आदर-सम्मान किया। अविरत होनेवाले गीत-नृत्य-संगीत आदिसे उनका घर उत्सवमय बन गया। जिधर देखो उधर ही उत्सव-आनन्द दिखाई पड़ने लगा।

सुदर्शन और मनोरमा एक तो वैसे ही स्वभाव-सुन्दर, उसपर उन्हें जो बहुमूल्य जवाहरातके भूषण, सुन्दर वस्त्र, फूलमाला आदि पहराये गये उनसे उनकी शोभा और भी बढ़ गई। वे ऐसे जान पड़ने लगे मानों देवकुमार और सुरबालाका जोड़ा इस लोकमें अपना ऐश्वर्य बतलानेको स्वर्गसे आया है। समयपर बड़े वैभवके साथ इनका पवित्र विवाहोत्सव सम्पन्न हो गया। पुण्यके उदयसे दोनों दम्पतीको अपनी अपनी मनचाही वस्तु प्राप्त हो गई। दोनोंको इससे जो सुख जो आनन्द मिला, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

इन नव दम्पतीके अब ज्यों ज्यों दिन बीतने लगे त्यों त्यों उनका प्रेम अधिकाधिक बढ़ता ही गया। दोनों सुन्दर, दिव्य देहके धारी, दोनों गुणी, फिर इनके प्रेमका, इनके सुखका क्या पूछना। दोनों ही दम्पती कल्पवृक्षसे उत्पन्न हुए सुखको भोगते हुए आनन्दसे समय बिताने लगे। इनकी सुन्दरता बड़ी ही मोहित करनेवाली थी। इन्हें जो देख पाता था उसकी आँखोंको बड़ी शान्ति मिलती थी। इसी तरह सुखसे रहते हुए पुण्यसे इन्हें एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। वह भी इन्हीं सरीखा दिव्यरूप धारी, गुणी और नेत्रोंको आनन्द देनेवाला था। उसका नाम सुकान्त रक्खा गया।

एकबार समाधिगुप्त मुनिराज अपने बड़े भारी संघके साथ विहार करते हुए चम्पापुरीमें आये। आकर वे शहर बाहर बागमें ठहरे। वे बड़े ज्ञानी और तपस्वी थे। बड़े बड़े राजे-महाराजे, देव, विद्याधर आदि सभी उन्हें मानते थे—उनकी सेवा-भक्ति करते थे।

सच्चे मोक्षमार्गका प्रचार करना और भव्यजनोंको उसमें प्रवृत्त कराना उनका काम था। जीवमात्रका हित हो और वे ज्ञान लाभ करें ऐसे उपायों—कोशिशोंके करनेमें वे सदा तत्पर रहा करते थे।

बागके मालीने उनके आनेके समाचार राजा वगैरहको दिये। शहरके सब लोग अपने अपने परिजनके साथ पूजन सामग्री ले-लेकर बड़े आनन्दसे उनकी पूजा-वन्दना करनेको गये। वहाँ सब संघके साथ विराजे हुए समाधिगुप्त योगिराजकी उन्होंने बड़ी भक्तिके साथ आठ द्रव्योंसे पूजा की, उन्हें सिर झुका नमस्कार किया, बड़े प्रेमके साथ उनके गुण गाये—स्तुति की। इसके बाद धर्मोपदेश सुननेकी इच्छासे वे सब उनके पाँवोंके पास बैठ गये। समाधिगुप्त मुनिराजने उस धर्मामृतकी प्यासी भव्यसभाको धर्मवृद्धि देकर इस प्रकार उपदेश करना आरंभ किया—

भव्यजनो, जिनभगवान्ने जिस धर्मका उपदेश किया वह पवित्र दयाधर्म संसारमें सब धर्मोंसे उच्च धर्म है। उसमें जीव मात्र, फिर चाहे वह छोटा हो या बड़ा, समान दृष्टिसे देखे जाते हैं—किसी भी जीवको प्रमाद या कषायसे जरा भी कष्ट पहुँचाना उसमें मना है और उसकी यह उदार भावना है कि—

'मा कार्षीत्कोपि पापानि मा च भूत्कोपि दुःखितः।'

मतलब यह कि न कोई पापकर्म करे और न कोई दुखी हो—संसारके जीवमात्र सुखलाभ करें। तब भव्यजनो, तुम इसी पवित्र धर्मको दृढ़ताके साथ धारण करो। देखो, यह दयामयी धर्म पापोंका नाश करनेवाला और मोक्ष-सुखका देनेवाला है। इसी

धर्मके प्रसादसे धर्मात्मा जन तीन लोककी सम्पत्ति प्राप्त करते हैं। उसके लिए उन्हें कुछ प्रयत्न नहीं करना पड़ता। जो लोग इन्द्र और अहमिन्द्रका पद लाभ करते हैं, तीर्थंकर होते हैं, आचार्य या संघाधिपति होते हैं वह सब इसी धर्मका फल है। तीन लोकमें जो उत्तमसे उत्तम सुख है, ऊँचीसे ऊँची भावनायें हैं—मनचाही वस्तुओंकी चाह है, वे सब हमें धर्मसे प्राप्त हो सकती हैं। धर्मराजके भयसे मौत भी भाग जाती है—उसका कोई वश नहीं चलता और पापरूपी राक्षस तो उसके सामने खड़ा भी नहीं होता। धर्मसे बुद्धि निर्मल और पापरहित होती है, श्रेष्ठ और पवित्र होती है और उसमें सब पदार्थ प्रतिभासित होने लगते हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चारित्र आदि जितने संसारके हरनेवाले और मोक्ष-सुखके देनेवाले गुण हैं, वे सब धर्मात्मा जन धर्मके प्रभावसे प्राप्त करते हैं। कला, विज्ञान, चतुरता, विवेक, शान्ति, संसारके दुःखोंसे भय, वैराग्य आदि पवित्र गुण धर्मसे ही बढ़ते हैं। इस धर्मरूपी मंत्रका प्रभाव बहुत बढ़ा चढ़ा है। शिवसुन्दरी भी इससे आकर्षित होकर धर्मात्मा जनको अपना समागम-सुख देती है तब बेचारी स्वर्गकी देवाङ्गनाओंकी तो उसके सामने कथा ही क्या। इस प्रकार स्वर्ग और मोक्षका सुख देनेवाला जो धर्म है, उसे जिनभगवान्‌ने दो भागोंमें बाँटा है। पहला—गृहस्थधर्म, जो सरलतासे धारण किया जानेवाला एकदेशरूप है। इसमें पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार ये बारह व्रत धारण किये जाते हैं और देव-पूजा,

गुरु-सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप, दान ये छह कर्म प्रतिदिन किये जाते हैं। इसी गृहस्थधर्मके विशेष भेदरूप ग्यारह प्रतिमायें हैं। क्रम-क्रमसे उन्हें धारण करता हुआ श्रावक इस धर्मकी अन्तिम श्रेणी तक पहुँचकर फिर दूसरे मुनिधर्मके योग्य हो जाता है। इस गृहस्थधर्मका साक्षात् फल है सोलह स्वर्गोंकी प्राप्ति और परम्परा मोक्ष।

दूसरा—मुनिधर्म है। यह सर्व-त्यागरूप होता है, अत एव कठिन भी है। सहसा उसे कोई धारण नहीं कर पाता। उसमें जिन बातोंका त्याग किया जाता है या जो बातें ग्रहण की जाती हैं वह त्याग और ग्रहण पूर्णरूपसे होता है। कल्पना कीजिए, जैसे अणुव्रतोंमें पाँचवाँ अणुव्रत है 'परिग्रह-परिमाण'। अर्थात् धन्य-धान्य, दासी-दास, सोना-चाँदी आदि दस प्रकार वस्तु-ओंका प्रमाण करना—अपनी लोकयात्राके निर्वाह लायक वस्तुयें रखकर बाकी वस्तुओंका त्याग करदेना। यह तो गृहस्थधर्मके योग्य एकदेश-त्यागरूप अणुव्रत और इसी व्रतको मुनि जब धारण करते हैं तो वे सर्व-त्यागरूप धारण करेंगे—इन वस्तुओंमेंसे वे कुछ भी न रख-कर सबका त्याग करदेंगे। वे घर-बार छोड़कर जंगलोंमें रहेंगे। इसी धर्मका दूसरा नाम है महाव्रत। इसमें पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति, पाँच समिति आदि अट्ठाईस मूलगुण धारण किये जाते हैं। इस धर्मको वे ही धारण कर सकते हैं जो बड़े धीर-वीर और साहसी होते हैं। इसके धारण करनेवाले योगी लोग बड़ी कठिन तपस्या करते हैं। वे गर्मीके दिनोंमें पहाड़ोंकी चोटियोंपर, वर्षाके दिनोंमें

वृक्षोंके नीचे और ठंडके दिनोंमें नदी या तालाबके किनारोंपर तप तपा करते हैं । वे बड़े क्षमाशील, कोमल-परिणामी, सरल-स्वभावी, सत्य बोलनेवाले, निर्लोभी, संयमी, तपस्वी, त्यागी, निष्परिग्रही और ब्रह्मचारी होते हैं । इस धर्मका साक्षात् फल है मोक्ष और गौण फल स्वर्गादिकका सुख । इस निष्पाप यतिधर्मको जैसा निर्मोही मुनि लोग ग्रहण कर सकते हैं वैसा मोही गृहस्थ स्वप्नमें भी उसे धारण नहीं कर सकते । इसी लिए कि उनका चित्त सदा आकुल-व्याकुल रहनेके कारण उनके अशुभ कर्मोंका आस्रव अधिक आता रहता है और यही कारण है कि वे मुनिधर्मकी कारण वास्तविक चित्त-शुद्धिको प्राप्त नहीं कर सकते । इतने कहनेका सार यह है कि यह मोह संसारका शत्रु है, इसलिए महात्मा पुरुषोंको चाहिए कि वे इसे वैराग्यरूपी तलवारसे मारकर धर्मको ग्रहण करें ।

सुदर्शनके पिताने इस प्रकार निर्दोष मुनिधर्मका उपदेश सुनकर मनमें विचारा—हाय, हम लोगोंने मोहरूपी शत्रुके वश होकर धर्म-साधन करनेका बहुतसा समय संयम न धारण कर व्यर्थ ही गँवा दिया । न जाने कालरूपी शत्रु आज-कलमें कब लिवानेको आजाय, इसे कोई नहीं जान सकता । क्योंकि इस पापी कालको न बालकोंका विचार है, न जवानोंका और न बूढ़ोंका । हर एकको अपनी इच्छानुसार यह चटपट अपने पेटमें रख लेता है । आयु बिजलीके समान चंचल है । कुटुम्ब-परिवार क्षणिक है । धन-दौलत बादलोंके समान देखते देखते

नष्ट होनेवाली है। जवानी रोगसे घिरी है। इन्द्रियोंका सुख दुःखका कारण है। बुद्धिमान् लोग उसे अच्छा नहीं कहते। इस संसारमें पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहिन आदि जितने संयोग हैं या भोगोपभोग हैं वे सब विनाशीक हैं—निश्चयसे नष्ट होनेवाले हैं। इसलिए समझदार लोगोंको उचित है कि जबतक शरीर नीरोग है, इन्द्रियाँ समर्थ हैं, और आयु नष्ट नहीं हुई है उसके पहले वे अपने आत्महितके लिए निर्दोष तपका साधन करें। तब मुझे योग्य है कि मैं भी योगी बनकर परम गुरुकी कृपासे मोहका नाशकर निर्दोष तप ग्रहण करूँ। इस विचारने वृषभदासके हृदयमें दूना वैराग्य बढ़ा दिया। उन्होंने तब अपने प्रिय पुत्र सुदर्शनको राजाकी संरक्षकतामें रखकर और आप बाह्याभ्यन्तर परिग्रहका, सब धन-दौलतका तृणकी तरह परित्याग कर देव-दुर्लभ संयम—मुनिधर्मके धारक योगी होगये।

इधर उनकी स्त्री जिनमती भी समाधिगुप्त मुनिराजको नमस्कार कर और सब परिग्रहको छोड़कर कर्मोंकी नाश करनेवाली जिनदीक्षा ले आर्यिका होगई। इन दोनोंने जीवनपर्यन्त महान् तप किया। अन्तमें समाधिपूर्वक प्राणोंको छोड़कर ये उसके फलसे स्वर्गमें गये, जो कि दिव्य ऐश्वर्य और वैभवसे परिपूर्ण है।

सुदर्शन भी बड़ा ही धर्मात्मा था। उसने भी मुनिराजके पास मोक्षकी इच्छासे श्रद्धापूर्वक सम्यग्दर्शन और उसके साथ साथ पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत धारण किये और दान, पूजा, स्वाध्याय आदिके प्रतिदिन करनेकी प्रतिज्ञा की। अपनी इन्द्रियोंकी या विषयोंकी शान्तिके लिए उसने एक नियम किया।

वह यह कि "मैं अपनी प्रिय पत्नी मनोरमाके सिवा संसारकी स्त्री-मात्रको अपनी माता-बहिनके समान गिनूँगा ।" इस धर्म-लाभसे तथा मुनिराजके पवित्र गुणोंसे सुदर्शनको बड़ा ही आनन्द हुआ—उसका चित्त खूब ही प्रसन्न हुआ। वह उन्हें बार बार प्रणाम कर अपने घर लौट आया।

सुदर्शनने अब अपना घरका सब कारोबार सम्हाला। पुत्रको वह स्वयं विज्ञान, कला-कौशल आदिकी शिक्षा देने लगा। धर्मकी ओर भी उसकी पूर्ण सावधानी थी। वह भक्तिपूर्वक रोज देव-गुरुकी सेवा-पूजा करता था, सुपात्रोंको शक्ति और श्रद्धासे दान देता था, जिन-वाणीका मनन-चिंतन करता था, और धर्मकी प्राप्ति हो, वैराग्य बढ़े, इसके लिए वह मन-वचन-कायकी शुद्धिसे निरतिचार बारह व्रतोंका पालन करता था। इसके सिवा वह अष्टमी और चतुर्दशीको घरगि-रिस्तीका सब आरंभ-सारंभ छोड़कर प्रोषधोपवास करता था और रातमें मुनिसमान सर्व-त्यागी हो मसानमें कायोत्सर्ग ध्यान करता था। शंकादि दोष रहित सम्यग्दर्शन, पवित्र आचार-विचारों, और शुभ भावना-ओंसे धर्मलाभ करता हुआ वह ऐसा शोभता था जैसा मानों धर्मकी साक्षात् प्रतिमा हो—मूर्तिमान् धर्म हो। इस धर्मके फलसे उसे जो सुख, जो ऐश्वर्य, जो भोगोपभोग-सामग्री प्राप्त हुई उसे उसने अपनी प्रियाके साथ साथ खूब भोगा। सच है धर्मसे मनचाही धन-सम्पत्ति प्राप्त होती है और धन-सम्पत्तिसे काम-पुरुषार्थकी प्राप्ति होती है और जो निस्पृह होकर इन्हें भी छोड़ देता है फिर उसके सुखका तो पूछना ही क्या। वह तो मोक्षके सुखको प्राप्त कर लेता है, जो

सुखका समुद्र है। यही जानकर सुदर्शन सेठ अपने मनोरथकी सिद्धिके लिए बड़े यत्नसे धर्म-साधन करता था। इस प्रकार वह स्वयं हृदयमें धर्मका चिंतन करता था और लोगोंको उसका उपदेश करता था। उसके शुद्ध आचार-विचारोंको देखकर यह जान पड़ता मानों वह धर्ममय हो गया है। धर्मने देह धारण कर लिया है।

देखिए, सुदर्शन जो इतना सुख भोग रहा है, उसका राजा-प्रजामें मान है, वह गुणोंका समुद्र कहा जाता है, यह सब उसने जो धर्म-साधन कर पुण्य कमाया है उसका फल है। तब जो बुद्धिमान् हैं और सुखकी चाह करते हैं उन्हें भी चाहिए कि वे मन-वचन-कायकी पवित्रताके साथ एक धर्महीकी आराधना करें। मेरी भी यह पवित्र भावना है कि धर्म गुणोंका खजाना है, इसलिए मैं उसका सदा आराधन करता रहूँ। धर्मका मुझे आश्रय प्राप्त हो। धर्म द्वारा मैं मोक्षमार्गका आचरण करता रहूँ। मेरी सब क्रियायें धर्मके लिए हों। मेरा दृढ़ विश्वास है—धर्मको छोड़कर मेरा कोई हितू नहीं। मुझे वह शक्ति प्राप्त हो जिससे मैं धर्मके कारणोंका पालन करता रहूँ। धर्ममें मेरा चित्त दृढ़ हो और हे धर्म, मेरी तुझसे प्रार्थना है कि तू मेरे हृदयमें विराजमान हो।

धर्म पापरूपी शत्रुका नाश करनेवाला और मनचाहे सुखोंका देनेवाला है। जो स्वर्ग चाहता है उसे स्वर्ग, जो चक्रवर्ती बनना चाहता है उसे चक्रवर्ती-पद, जिसे इन्द्र होनेकी चाह है उसे इन्द्र-पद, जो पुत्र चाहता है उसे पुत्र, जो धन-दौलत चाहता है उसे धन-दौलत, जो सुख चाहता है उसे सुख और जो मोक्ष

चाहता है उसे मोक्ष अर्थात् जिसे जो कुछ इच्छा है—चाह है वह सब उसे एक धर्मके प्रसादसे प्राप्त हो सकती है। इसलिए हे भव्यजनो, मैं बहुत कहकर आडंबर बढ़ाना पसंद नहीं करता। आप एक धर्महीकी सावधानीसे प्रतिदिन आराधना करें। उससे आप सब कुछ मनचाहा सुख लाभ कर सकेंगे।

तीसरा परिच्छेद ।

सुदर्शन संकटमें ।

महात्मा सुदर्शनने जिस परम-गतिको प्राप्त किया, उसके स्वामी सिद्ध भगवान्को मोक्ष प्राप्तिके लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

एक दिन कपिलकी स्त्री कपिलाने सुदर्शनको देखा। उसकी अलौकिक सुन्दरताको देखकर वह उसपर जी-जानसे निछावर हो गई। वह मन ही मन कहने लगी—इस खूबसूरत युवाके बिना मेरा जीवन निष्फल है। यह सुन्दरता जबतक मेरा आलिङ्गन न करे तबतक मैं जीती हुई भी मरी हूँ। तब मुझे कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे मैं इस स्वर्गीय-सुधाका पान कर सकूँ। वह अब ऐसे मौकेको ढूँढने लगी। इधर धर्मात्मा सुदर्शनको इस बातका कुछ पता नहीं, जिससे कि वह सावधान हो जाय।

एक दिन सुदर्शन अपनी मित्र-मंडलीके साथ कहीं जा रहा था। वह कपिलके घरके नीचे होकर निकला। उसे जाता देखकर कपिलकी

स्त्रीने, जो कि कामके वाणोंसे बहुत ही कष्ट पा रही थी, अपनी एक सखीको बुलाकर कहा-सखि, सुदर्शनको मैं बहुत ही प्यार करती हूँ। मैं नहीं कह सकती कि उसके विना मेरे प्राण बच सकेंगे या नहीं। इसलिए मैं तुझसे प्रार्थना करती हूँ कि तू जिस तरह बने सुदर्शनको मेरे पास ला। वह तब दौड़ती हुई जाकर सुदर्शनसे बोली-कुँअरजी, आप तो ऐसे निर्दयी होगये जो अपने मित्र तककी खबर नहीं लेते कि वह किस दशामें है? उनकी आज कई दिनोंसे आँखें बड़ी दुखती हैं। उससे वे बड़े कष्टमें हैं। भई, न जाने आप कैसे मित्र हैं जो उनकी बात भी नहीं पूछते।

सुदर्शनने कहा-मुझे इस बातकी कुछ खबर नहीं। नहीं तो भला ऐसा कैसे हो सकता है कि मैं उनके पास न आता। यह कहकर सुदर्शन कपिलके घर पहुँचा। उसे मालूम न था कि कपिल कहाँ है। उसने कपिलाकी सखीसे पूछा-मित्र कहाँपर है? उसने झूठे ही सुदर्शनसे कह दिया-वे ऊपर सोये हुए हैं। आप अपनी इस मंडलीको यहीं बैठाकर अकेले जाइए। सुदर्शनने वैसा ही किया। अपने मित्रोंको वह नीचे ही बैठाकर आप बड़े प्रेमसे मित्रके मिलनेकी इच्छासे ऊपर पहुँचकर एक सुन्दर सजे हुए कमरेमें दाखिल हुआ। इधर कामुकी कपिलकी स्त्री सखीके जाते ही अपनी सेजपर, जिसपर कि एक बहुत कोमल और शरीरमें गुदगुदी पैदा करनेवाला गदेला बिछा हुआ था, जा सोई और ऊपरसे उसने एक बारीक कपड़ा मुँहपर डाल लिया।

सुदर्शन जाकर धीरेसे पलंगपर बैठ गया। कारण उसे तो यह ज्ञात न था कि इसपर कपिलकी स्त्री सोई हुई है। बैठकर उसने बड़े प्रेमसे पूछा—प्रियमित्र, आपको क्या तकलीफ है? इतनेमें कपिलाने सुदर्शनका हाथ पकड़कर उसे अपने स्तनोंपर रख लिया और बड़ी दीनताके साथ वह सुदर्शनसे बोली—प्राणप्यारे, जिस दिनसे आपको मैंने देख पाया है तबसे मैं अपने आप तकको खो चुकी हूँ। मृत्युकी सेजपर पड़ी पड़ी रात-दिन आपकी मंजुल मूर्तिका ध्यान किया करती हूँ। आज बड़े भाग्यसे मुझे आपका समागम लाभ हुआ। आप दयावान् हैं, इसलिए मैं आपसे प्रेमकी भीख माँगती हूँ। मुझे संभोग-दान देकर कृतार्थ कीजिए—मुझे कालके मुँहसे छुड़ाइए।

सुदर्शन एकदम चौंक पड़ा। लज्जाके मारे वह अधमरासा हो गया। उसे काटो तो खून नहीं। वह कपिलाकी इस बीभत्स वासनाका क्या उत्तर दे। उस परम शीलवान्के सामने बड़ी कठिन समस्या आकर उपस्थित हुई। उसने तब बड़े नम्र शब्दोंमें कहा—बहिन, तू जिसकी चाह करती है, वह पुरुषत्वपना तो मुझमें है ही नहीं—मैं तो विषय-सेवनके बिल्कुल अयोग्य हूँ। और इसके सिवा तुझसी कुलीन घरानेकी स्त्रियोंके लिए ऐसा करना महान् कलंक और पापका कारण है। तुझे तो उचित है कि तू इस अजेय कामरूपी शत्रुको वैराग्यकी तलवारसे मारकर शीलरूपी दिव्य अलंकारसे अपनेको भूषित करे—अपने कामी मनको काबूमें रक्खे। क्योंकि जो स्त्री या पुरुष शील रहित हैं, अपवित्र हैं वे अपने शील-भंगके पापसे सातवें नर्कमें जाते हैं। इसलिए प्राणोंका छोड़ देना कहीं अच्छा है, पर

शील नष्ट करना अच्छा नहीं। कारण शील नष्ट करदेनेसे पापका बंध होता है, संसारमें अपकीर्त्ति होती है और अन्तमें अनन्त कष्ट उठाने पड़ते हैं। इस प्रकार वचन सुनकर कपिलाको सुदर्शनसे बड़ी नफरत होगई। उसने सुदर्शनको छोड़ दिया। सुदर्शन भी उसके घरसे निकलकर निर्विघ्न अपने घर पहुँच गया। अवसे वह और दृढ़ताके साथ अपने शील-धर्मकी रक्षा करने लगा। बड़े धर्म-साधन और सुखसे उसके दिन जाने लगे। पुण्यके उदयसे उसे सब कुछ प्राप्त हुआ।

वसन्त आया। जंगलमें मंगल हुआ। वनश्रीने अपने घरको खूब ही सजाया। जिधर देखो उधर ही लतायें वसन्तका—अपने प्राणप्यारेका आगमन देखकर खिले फूलोंके बहाने मन्द मन्द मुस-क्या रही थीं। आम्रवृक्ष अपनी सुगन्धित मंजरीके बहाने पुष्पवृष्टि कर रहे थे। उनपर कूजती हुई कोकिलायें बधाईके गीत गा रही थीं। था वन, पर वसन्तने अपने आगमनसे उसे अच्छे अच्छे शहरोंसे भी सुहावना और मोहक बना दिया था।

वसन्त आया जानकर राजा-प्रजा अपने अपने प्रियजनको साथ लेकर वन-विहारके लिए उपवनोंमें आ जमा हुए। रानी अभयमती अपने सब अन्तःपुर और प्रिय सहेली कपिलाके साथ पुष्पक रथमें बैठकर उपवनमें जानेको राजमहलसे निकली। इसी समय सुदर्शनकी स्त्री मनोरमा भी प्रियपुत्र सुकान्तको गोदमें लिये रथमें बैठी वसन्तोत्सवमें शामिल होनेको जा रही थी। इस स्वर्गकीसी सुन्दरीको जाते देखकर अभयमतीने अपनी सखी-सहेलियोंसे पूछा—जिसकी सुन्दरता आँखोंमें

चकाचौंध किये देती है, वह रथमें बैठी हुई सुन्दरी कौन है? और किस पुण्यवान्‌का समागम पाकर वह सफल-मनोरथ हुई है? उनमेंसे किसी एक सखीने कहा—महारानीजी, आप नहीं जानती, यह अपने राजसेठ सुदर्शनजीकी प्रिया और गोदमें बैठे हुए उनके पुत्र सुकान्तकी माता मनोरमा है। यह सुनकर रानीने एक लम्बी साँस लेकर कहा—वह माता धन्य है, जो ऐसे सुन्दर पुत्र-रत्नकी माता और सुदर्शनसे खूबसूरत युवाकी पत्नी है। इसपर कपिलाने कहा—पर महारानीजी, मुझे तो किसीने कहा था कि सुदर्शन सेठ पुरुपत्व-हीन हैं, फिर भला उनके पुत्र कैसे हुआ? रानी बोली—नहीं कपिला, यह बात बिल्कुल झूठी है। सुदर्शनसा धर्मात्मा कभी पुरुषत्व-हीन नहीं हो सकता। किन्तु जो अत्यन्त पापी होता है, वही पुरुपत्व-हीन होता है, दूसरा नहीं। किसी दुष्टने सुदर्शनके सम्बन्धमें ऐसी झूठी बात तुझसे कहदी होगी। कपिला बोली—महारानीजी, मैं जो कुछ कहती हूँ वह सब सत्य है। और तो क्या, पर यह घटना स्वयं मुझपर बीती है। मैं आपसे सच कहती हूँ कि मेरा सुदर्शनपर बड़ा अनुराग होगया था। एक दिन मौका पाकर मैंने उससे प्रेमकी प्रार्थना की; पर उसने स्वयं अपनेको पुरुषत्व-हीन बतलाया तब मुझे उससे बड़ी नफरत होगई। रानीने फिर कहा—कपिला, बात यह है कि वह बड़ा धर्मात्मा पुरुष है। पापकी बातोंकी, पापकी क्रियाओंकी जहाँ चर्चा हो वहाँ तो वह जाकर खड़ा भी नहीं रहता। यही कारण था कि तुझे उस बुद्धिमान्‌ने ऐसा उत्तर देकर ठग लिया। यह सुन दुष्ट कपिलाको सुदर्शनसे बड़ी ईर्षा हुई।

उस पापिनीने तब निर्लज्ज होकर रानीसे बड़े निन्दित शब्दोंमें, जो स्त्रियोंके बोलने लायक नहीं और दुर्गतिमें लेजानेवाले थे, कहा-रानीजी, मैं तो मूर्ख ब्राह्मणी ठहरी सो उसने जैसा कहा वही ठीक मान लिया। पर आप तो क्या सुन्दरतामें और क्या ऐश्वर्यमें, सब तरह योग्य हैं, इसलिए मैं आपसे कहती हूँ कि आपकी यह जवानी, यह सौभाग्य तभी सफल है जब कि आप उस दिव्य-रूप धारीके साथ सुख भोगें—ऐशो आराम करें। रानी अभयमती पहले-हीसे तो सुदर्शनपर मोहित और उसपर कपिलाकी यह कुत्सित प्रेरणा, तब वह क्यों न इस काममें आगे बढ़े। उसने उसी समय अपने सतीत्व धर्मको जलाञ्जलि देकर कहा—प्रतिज्ञा की--" मैं या तो सुदर्शनके साथ सुख ही भोगूँगी और यदि ऐसा योग न मिला तो उन उपायोंके करनेमें ही मैं अपनी जिन्दगी पूरी कर दूँगी, जो सुदर्शनके शील-धर्मको नष्ट करनेमें कारण होंगे।" इस प्रकार अभिमानके साथ प्रतिज्ञा कर वह कुल-कलंकिनी वन-विहारके लिए आगे बढ़ी। उपवनमें पहुँच कर उसने थोड़ी-बहुत जल-केलि की सही, पर उसका मन तो सुदर्शनके लिए तड़फ रहा था; सो उसे वहाँ कुछ अच्छा न लगा। वह चिन्तातुर होकर अपने महल लौट आई। यहाँ भी उसकी वही दशा रही—कामने उसकी विह्व-लता और भी बढ़ा दी। वह तब अपनी सेजपर औंधा मुँह किये पड़ रही। उसकी यह दशा देखकर उसकी धायने उससे पूछा—बेटी, आज ऐसी तुझे क्या चिन्ता होगई जिससे तुझे चैन नहीं है। अभयमतीने बड़े कष्टसे उससे कहा—मा, मैं जिस निर्ल-

ज्जतासे आपसे बोलती हूँ, उसे क्षमा करना। मैं इस समय सर्वथा पर-वश हो रही हूँ और असंभव नहीं कि जिस दशामें मैं अब हूँ उसीमें कुछ दिन और रहूँ तो मेरे प्राण चले जायँ। इसलिए मुझे यदि तुम जिन्दा रखना चाहती हो, तो जिस किसी उपायसे बने एकवार मेरे प्यारे सुदर्शनको लाकर मुझसे मिलाओ। वही मुझे जिलानेके लिए संजीवनी है। उनकी यह असाध्य वासना सुनकर उस धायने उसे समझाया—देवी, तूंने बड़ी ही बुरी और घृणित इच्छा की। जरा आँखे खोलकर अपनेको देख तो सही कि तू कौन है? तेरा कुल कौन है? तू किसकी गृहिणी है? और ये निन्दनीय विचार, जो तेरे पवित्र कुलको कलंकित करनेवाले हैं, तेरे—तुझसी राज-रानीके योग्य हैं क्या? तू नहीं जानती कि ऐसे बुरे कामोंसे महान् पापका बंध होता है, अपना सर्वनाश होता है और सारे संसारमें अपकीर्ति—अपवाद फैल जाता है। क्या तुझे इन बातोंका भय नहीं? यदि ऐसा है तो बड़े ही दुःखकी बात है। कुलीन घरानेकी स्त्रियोंके लिए पर-पुरुषका समागम तो दूर रहे, किन्तु उसका चिन्तन करना—उसे हृदयमें जगह देना भी महा पाप है, अनुचित है और सर्वस्व नाशका कारण है। और तुझे यह भी मालूम नहीं कि सुदर्शन बड़ा शीलवान् है। उसके एक पत्नीव्रत है। वह दूसरी स्त्रियोंसे तो बात भी नहीं करता। इसके सिवा यह भी सुना गया है कि वह पुरुषत्व-हीन है। भला, तब तू उसके साथ क्या सुख भोगेगी? और ऐसा संभव भी हो, तो इस पापसे तुझे दुर्गतिके दुःख भोगना पड़ेंगे। यह काम महान् निंद्य और सर्वस्व नाश करनेवाला है।

और एक बात है। वह यह कि तेरा महल कोई ऐसा वैसा साधारण मनुष्यका घर नहीं, जो उसमें हर कोई बे-रोक टोक चला आवे। उसे बड़े बड़े विशाल सात कोट घेरे हुए हैं। तब बतला उस शील-वान्को यहाँ ले-आना कैसे संभव हो सकता है? इसलिए तुझे ऐसा मिथ्या और निंद्नीय आग्रह करना उचित नहीं। इससे सिवा सर्व-नाशके तुझे कुछ लाभ नहीं। मैंने जो तेरे हितके लिए इतना कहा—तुझे दो अच्छी बातें सुझाईं, इनपर विचार कर और अपने चंचल चित्तको वश करके इस दुराग्रहको छोड़। अभयमतीको यह सब उपदेश कुछ नहीं रुचा। कामने उसे ऐसी अन्धी बना दिया कि उसका ज्ञान-नेत्र मानों सदाके लिए जाता रहा। वह अपनी धायसे जरा जोरमें आकर बोली—मा, सुनो, बहुत कहनेसे कुछ लाभ नहीं। मेरा यह निश्चय है कि यदि मैं प्यारे सुदर्शनके साथ सुख न भोग सकी तो कुछ परवा नहीं, इसलिए कि वह सुख पर-वश है। पर तब अपने प्यारेके वियोगमें स्वाधीनतासे मरते हुए मुझे कौन रोक सकेगा? मैं अपने प्यारेको याद करती हुई बड़ी खुशीके साथ प्राण-विसर्जन करूँगी—उन्हें प्रेमकी बलि दूँगी। अभयमतीका यह आग्रह देखकर उसकी धायने सोचा—यह किसी तरह अपने दुराग्रहको छोड़ती नहीं दिखती। तब लाचार हो उसने कहा—ना, ऐसा बुरा विचार न कर। थोड़ी धीरता रख। मैं इसके लिए कोई उपाय करती हूँ। इस प्रकार अभयमतीको कुछ धीर बँधाकर वह एक कुम्हारके पास गई और उससे कहकर उसने सात पुरुष-प्रतिमायें बनवाईं। उनमेंसे पड़वाकी रातको एक प्रतिमाको अपने कन्धेपर

रखकर वह राजमहलके दरवाजेपर आई। अपना कार्य सिद्ध होनेके लिए दरवाजेके पहरेदारको अपनी मुट्ठीमें करलेना बहुत जरूरी समझा और इसीलिए उसने यह कपट-नाटक रचा। वह दरवाजेपर जैसी आई वैसी ही किसीसे कुछ न कह-सुनकर भीतर जाने लगी। उसे भीतर घुसते देखकर पहरेपरके सिपाहीने रोककर कहा—माजी, आप भीतर न जायँ। मैं आपको मना करता हूँ। इसपर बनावटी क्रोधके साथ उसने कहा—मूर्ख कहींके, तू नहीं जानता कि मैं रानीके महलमें जा रही हूँ। मुझे तू क्यों नहीं जाने देता? सिपाही भी फिर क्यों चुप होनेवाला था। उसने कहा—राँड, चल लम्बी हो! दिखता नहीं कि रात कितनी जा चुकी है? इस समय मैं तुझे किसी तरह नहीं जाने दे सकता। सिपाहीके मना करनेपर भी उसने उसकी कुछ न सुनी और आप जबरदस्ती भीतर घुसने लगी। सिपाहीको गुस्सा आया सो उसने उसे एक धक्का मारा। वह जमीनपर गिर पड़ी। साथ ही उसके कन्धेपर रखी हुई वह पुरुष-प्रतिमा भी गिरकर फूट गई। उसने तब एकदम अपना भाव बदलकर गुस्सेके साथ उस पहरेदारसे कहा—मूर्ख, ठहर, घबरा मत मैं तुझे इसका मजा चखाती हूँ। तू नहीं जानता कि आज महारानीने उपवास किया था। सो वे इस मिट्टीके बने कामदेवकी पूजा कर आज जागरण करतीं और आनन्द मनातीं। सो तूने इसे फोड़ डाला। देख अब सवेरे ही महारानी इस अपराधके बदलेमें तेरा क्या हाल करती हैं? तुझे सकुटुम्ब वे सूलीपर चढ़ा देंगी। उसकी इस विभीषिकाने बेचारे उस पहरेदारके रोम-रोमको कँपा

दिया। वह उसके पाँवोंमें पड़कर गिड़गिड़ाने लगा—रोने लगा। मा, क्षमा करो—मुझ गरीबपर दया करो। आज पीछे मैं कभी आपके काममें किसी प्रकारकी बाधा न दूँगा। मा, क्रोध छोड़ो—मेरे बाल-बच्चोंकी रक्षा करो। इस प्रकार कूट-कपटसे उस बेचारेको जालमें फँसाकर उसने अपनी मुट्ठीमें कर लिया। अपने प्रयत्नमें सफलता हो जानेसे उसे बड़ा आनन्द हुआ। वह उस दिन बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने घर गई। इसी उपायसे उसने और भी छह पहरेदारोंको छह रातमें अपने काबूमें कर लिया।

यह पहले लिखा जा चुका है कि पुण्यात्मा सुदर्शन अष्टमी और चतुर्दशीको घर-गिरिस्तीका सब आरंभ छोड़कर प्रोपधोपवास करता था और रातमें कुटुम्ब परिग्रह तथा शरीरादिकसे ममत्व छोड़कर बड़ी धीरताके साथ मसानमें प्रतिमा-योग द्वारा ध्यान करता था। आज अष्टमीका दिन था। अपने नियमके अनुसार सुदर्शनने सूर्यास्त होनेके बाद मसानमें जाकर मुनियोंके समान प्रतिमा-योग धारण किया। सुदर्शनकी यह मसानमें आकर ध्यान करनेकी बात रानी अभयमतीकी धायको पहलेहीसे ज्ञात थी। सो कुछ रात बीतने-पर सुदर्शनको राजमहलमें लिवा ले-जानेको वह आई। उसने सुद-र्शनको देखा। वह इस समय अर्हन्त भगवान्‌के ध्यानमें लीन हो रहा था। मच्छर आदि जीव बाधा न करें, इसलिए उसने अपनेपर वस्त्र डाल रक्खा था। उससे वह ऐसा जान पड़ता था मानों कोई ध्यानी मुनि उपसर्ग सह रहे हैं। निश्चलता उसकी सुमेरुसी थी।

शरीरसे उसने बिल्कुल मोह छोड़ दिया था। बड़े धीरजके साथ वह ध्यान कर रहा था। गंभीरता उसकी समुद्र सरीखी थी। क्षमा पृथ्वी सरीखी थी। हृदय उसका निर्मल पानी जैसा था। कर्मरूपी वनको भस्म करनेके लिए वह अग्नि था। एकाकी था। शरीर भी उसका बड़ा ग्राण्डील बना था। उसे इस रूपमें देखकर वह धाय आश्चर्यके मारे चकित होगई। तब वह ध्यानसे किसी तरह चल जाय, इसके लिए उस दुष्टाने सुदर्शनसे कुत्सित-विकार पैदा करनेवाले शब्दोंमें कहना शुरू किया—धीर, तू धन्य है। तू कृतार्थ हुआ, जो रानी अभयमती आज तुझपर अनुरक्त हुई। मैं भी चाहती हूँ कि तू सैकड़ों सौभाग्योंका भोगनेवाला हो। उठ, चल। रानीने तुझसे प्रार्थना की है कि तू उसके साथ दिव्य भोगोंको भोगे—आनन्द-विलासमें अपनी जिन्दगी पूरी करे। इत्यादि बहुत देरतक उसने सुदर्शनको ध्यानसे डिगानेके लिए प्रयत्न किया। परन्तु उसका सुदर्शनपर कुछ असर न हुआ। वह एक रत्तीभर भी ध्यानसे न डिगा। यह देखकर सुदर्शनपर उसकी ईर्षा और अधिक बढ़ गई। तब उस दुष्टिनीने—उस पापिनीने सुदर्शनके शरीरसे लिपटकर, उसके मुँहमें अपना मुँह देकर, तथा उसकी उपस्थ-इन्द्री, नेत्र आदिसे अनेक प्रकारकी कुचेष्टायें—कामविकार पैदा करनेवाली क्रियायें कर, नाना भाँति भय, लोभ बताकर उसपर उपसर्ग किया—उसके हृदयमें कामकी आग भड़काकर उसे ध्यानसे चलाना चाहा; पर वह महा धीर-वीर, और दृढ़ निश्चयी सुदर्शन ऐसे दुःसह उपसर्ग होनेपर भी न चला और मेरुकी भाँति स्थिर

बना रहा। इतना सब कुछ करनेपर भी उसे जब ऐसा निश्चल देखा तब वह खीजकर उसे अपने कन्धेपर उठाकर चलती बनी। सुदर्शन तब भी अपने ध्यानमें वैसा ही अचल बना रहा, मानों जैसा काठका पुतला हो। उस कामके कालको धायने छुपाकर महारानीके सोनेके महलमें ला रक्खा। अभयमती सुदर्शनकी अनुपम रूप-सुन्दरता देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। उसने तब स्वयं सुदर्शनसे प्रेमकी भीख माँगी। वह बोली— प्राणनाथ, स्वामी, आप मुझे अत्यन्त प्यारे हैं। आपकी इस अलौकिक सुन्दरताको देखकर ही मैंने आपपर प्रेम किया है—मैं आपपर जी-जानसे निछावर हो चुकी हूँ। इसलिए हे प्राणप्यारे, मेरे साथ प्रेमकी दो बातें कीजिए और कृपाकर मुझे संभोग-सुखसे परितृप्त कीजिए। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मेरे साथ जिन्दगीके सफल करनेवाले भोगोंको भोगें। इत्यादि काम-विकार पैदा करनेवाले शब्दोंसे अभयमतीने पवित्र हृदयी सुदर्शनसे बहुत कुछ प्रार्थना कर उसे उत्तेजित करना चाहा, पर सुदर्शनने अपने शरीर और मनको तिलतुस मात्र भी न हिलाया चलाया। उसकी यह हालत देखकर अभयमती बड़ी खिन्न हुई। उसने तब ईर्षासे चिढ़कर सुदर्शनको उठाकर अपनी सेजपर सुला लिया और अपनी कामलिप्सा पूर्ण हो, इसके लिए उसने नाना भाँति कुचेष्टायें करना शुरू किया। वह हाव-भाव-विलास करने लगी, गाने लगी, नाचने लगी, नाना भाँतिका शृंगार कर उसे मोहने लगी, कटाक्ष फेंकने लगी, सुदर्शनका बारबार मुँह चूँमने लगी, उसके शरीरसे लिपटने लगी, उसके हाथोंको उठा-उठाकर अपने स्तनोंपर

रखने लगी, अपनी और उसकी गुह्येन्द्रियसे सम्बन्ध कराने लगी, उसकी गुह्येन्द्रियको अपने हाथोंसे उत्तेजित करने लगी। इत्यादि जितनी ब्रह्मचर्यके नष्ट करने और कामाग्निकी बढ़ानेवाली विकार चेष्टायें हैं, और जिन्हें यदि किसी साधारण पुरुषपर आजमाई जायँ तो वह कभी अपनी रक्षा नहीं कर सकता, उन सबको करनेमें उसने कोई बात उठा न रक्खी। सुदर्शन उसके साथ विषय-सेवन करे, इसके लिए उसने उसपर बड़ा ही घोर उपसर्ग किया। पर धन्य सुदर्शनकी धीरता और सहन-शीलताको जो उसने काम-विकारकी भावनाको रंचमात्र भी जगह न दी; किन्तु उसकी वैराग्य-भावना अधिक बढ़े, इसके लिए उसने यों विचार करना शुरू किया—स्त्रियोंका शरीर जिन चीजोंसे बना है उनपर वह विचार करने लगा। यह शरीर हड्डियोंसे बना हुआ है। इसके ऊपर चमड़ा लपेटा हुआ है। इसलिए बाहरसे कुछ साफसा मालूम देता है, पर वास्तवमें यह साफ नहीं है। जितनी अपवित्रसे अपवित्र वस्तुयें संसारमें हैं, वे सब इसमें मौजूद हैं। दुर्गन्धका यह घर है। तब स्त्रियोंके शरीरमें ऐसी उत्तम वस्तु कौनसी है, जो अच्छी और प्रेम करने योग्य हो? कुछ लोग स्त्रियोंके मुखकी तारीफ करते हैं, पर यह उनकी भूल है। क्योंकि वास्तवमें उसमें कोई ऐसी वस्तु नहीं जो तारीफके लायक हो। वह रक्त-श्लेष्मसे भरा हुआ है। उसमें लार सदा भरी रहती है। फिर किस वस्तुपर रीझकर उसे अच्छा कहें? क्या उसपर लपेटे हुए कुछ गोरे चमडे पर? नहीं। उसे भी जरा ध्यानसे देखो तब ज्ञान

पड़ेगा कि वह भी उन चीजोंसे जुदा नहीं है। स्त्रियोंके स्तनोंको देखिए तो वे भी रक्त और मांसके लोंदे हैं। आँखोंमें ऐसी कोई खूबी नहीं जो बुद्धिमान् लोग उनपर रीझें। उनका उदर देखिए तो वह भी विष्टा, मल, मूत्र आदि दुर्गन्धित वस्तुओंसे भरा हुआ, महा अपवित्र और बिलबिलाते कीड़ोंसे युक्त है। तब बुद्धिमान् लोग उसकी किस मुद्देपर तारीफ करें? रहा स्त्रियोंका गुह्याङ्ग, सो वह तो इन सबसे भी खराब है। उसमें मूत आदि खराब वस्तुयें स्रवती हैं और इसीलिए वह ग्लानिका स्थान है, बदबू मारता है, और ऐसा जान पड़ता है मानों नारकियोंके रहनेका बिल हो। तब वह भी कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसपर समझदार लोग प्रेम कर सकें। स्त्रियोंके शरीरमें जो जो वस्तुयें हैं, उनपर जितना जितना अच्छी तरह विचार किया जाय तो सिवा नफरत करनेके कोई ऐसी अच्छी वस्तु न देख पड़ेगी, जिससे प्रेम किया जाय।

इसके सिवा यह परस्त्री है और परस्त्रीको मैं अपनी माता, बहिन और पुत्रीके समान गिनता हूँ। उनके साथ बुरा काम करना महान् पापका कारण है। और इसीलिए आचार्योंने परस्त्रीको दर्शन-ज्ञान आदि गुणोंकी चुरानेवाली और धर्मकी नाश करनेवाली, नरकोंमें लेजानेका रास्ता और पापकी खान, कीर्तिकी नष्ट करनेवाली और वध-बन्धन आदि दुःखोंकी कारण बतलाया है। और सचमुच परस्त्री बड़ी ही निंदनीय वस्तु है। जहरीली नागिनको, जो उसी समय प्राणोंको नष्ट कर दे, लिपटा लेना कहीं अच्छा है, पर इस सातवें नरकमें लेजाने-

वाली दीपिकाका तो हँसी-विनोदसे भी छूना अच्छा नहीं। आज मुझे इस बातकी बड़ी खुशी है कि मेरा शुद्ध शील-धर्म सफल हुआ। इन उपद्रवोंको सहकर भी वह अखंडित रहा। इस प्रकार पवित्र भावनाओंसे अपने हृदयको अत्यन्त वैराग्यमय बना कर बड़ी निश्चलताके साथ सुदर्शन शुभ ध्यान करने लगा और अभयमती द्वारा किये गये सब उपद्रवोंको—सब विकारोंको जीतकर बाह्य और अन्तरंगमें वज्रकी तरह स्थिर और अभेद्य बना रहा। अभयमती अपने इस प्रकार नाना भाँति विकार-चेष्टाके करने पर भी सुदर्शनको पक्का जितेन्द्री और मेरुके समान क्षोभरहित—निश्चल देखकर बड़ी उद्विग्न हुई—बड़ी घबराई। तृण-रहित भूमिपर गिरी अग्नि जैसे निरर्थक हो जाती है, नागदमनी नामकी औषधिसे जैसे सर्प निर्विष हो जाता है उसी तरह रानी अभयमतीका झूठा अभिमान ब्रह्मचारी सुदर्शनके सामने चूर चूर होगया। उसके साथ वह बुरीसे बुरी चेष्टा करके भी उसका कुछ न कर सकी। तब चिढ़कर उसने अपनी धायको बुलाकर कहा—जहाँसे तू इसे लाई है वहीं जाकर इसी समय इसे फैंक आ। उसने बाहर आकर देखा तो उस समय कुछ कुछ उजेला हो चुका था। उसने जाकर रानीसे कहा—देवीजी, अब तो समय नहीं रहा—सवेरा हो चुका। इसे अब मैं नहीं लेजा सकती। सच है, जो दुर्बुद्धि लोग दुराचार करते हैं, वे अपना सर्वनाश कर क्लेश भोगते हैं और पापबंध करते हैं। इसके सिवा उन्हें और कोई अच्छा फल नहीं मिलता। इस संकट दशाको देखकर रानी बड़ी घबराई। इससे उसे अपनेपर बड़ी भारी विपत्ति

आती जान पड़ी। उसने तब अपनी रक्षाके लिए एक कुटिलताकी–चाल चली। किसीकी बुराई, ईर्षा, द्वेष, मत्सरता आदिसे सम्बन्ध न रखनेवाले धीर सुदर्शनको उसने कायोत्सर्गसे खड़ा कर और अपने शरीरमें नखों, दाँतों आदिके बहुतसे घाव करके वह एकदम बड़े जोरसे किल्कारी मारकर रोने लगी और लोगोंको पुकारने लगी, दौड़ो! दौड़ो!! यह पापी मुझ शीलवतीका सतीत्व नष्ट करना चाहता है। इस दुराचारीने कामसे अन्धे होकर मेरा सारा शरीर नोंच डाला। अभयमतीका आक्रन्दन सुनकर बहुतसे नौकर-चाकर दौड़ आये। उनमेंसे कुछने तो सुदर्शनको गिरफ्तार कर बाँध लिया और कुछने पहुँच कर राजासे फिरियाद की–महाराज, कामान्ध हुए सुदर्शनने आपके रनवासमें घुसकर रानीजीकी बड़ी दुर्दशा की–उनके सारे शरीरको उस पापीने नखोंसे नोंचकर लहु-लुहान कर दिया। राजाने जाकर स्वयं भी इस घटनाको देखा। देखते ही उनके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। उसकी कुछ विशेष तपास न कर अविचारसे उन्होंने नौकरोंको आज्ञा दी कि–जाओ इस कामान्ध हुए अन्यायी सेठको मृत्युस्थानपर लेजाकर मारडालो! राजाकी आज्ञा पाते ही वे लोग सुदर्शनको केश पकड़ कर घींसते हुए मारनेकी जगह ले गये। सुदर्शनके मारे जानेकी खबर जैसी ही चारों ओर फैली कि सारे शहरमें हा-हाकार मच गया। क्या स्वजन और क्या परजन सभी बड़े दुखी हुए। सब उसके लिए रो-रोकर कहने लगे कि हे सुभग, आज तुझसे सत्पुरुषके हाथोंसे ऐसा कौनसा अकारज हो गया जिससे तुझे मौतके मुँहमें जाना पड़ा! हाय! तुझसे धर्मात्माको

और प्राणदंड ? यह कभी संभव नहीं कि तू ऐसा भयंकर पाप करे । पर जान पड़ता है दैव आज तुझसे सर्वथा प्रतिकूल है । इसीलिए तुझे यह कठोर दंड भोगना पड़ेगा ।

सुदर्शन, लेजाकर मृत्यु स्थानपर खड़ा किया गया । इतनेमें एक जल्लादने उसके कामदेवसे कहीं बढ़कर सुन्दर और फूलसे कोमल शरीरमें तलवारका एक वार कर ही दिया । पर क्या आश्चर्य है कि उसके महान् शीलधर्मके प्रभावसे वह तलवार उसके गलेका एक दिव्य हार बन गई । इस आश्चर्यको देखकर उस जल्लादको अत्यन्त ईर्षा बढ़ गई । उस मूर्खने तब एकपर एक ऐसे कोई सैकड़ों वार सुदर्शनके शरीरपर कर डाले । पर धन्य सुदर्शनके व्रतका प्रभाव, जो वह जितने ही वार किये जाता था वे सब दिव्य पुष्प-मालाके रूपमें परिणत होते जाते थे । इतना सब कुछ करने पर भी सुदर्शनको कोई किसी तरहका कष्ट न पहुँचा सका ।

उधर सुदर्शनकी इस सुदृढ़ शील-शक्तिके प्रभावसे देवोंके सहसा आसन कम्पायमान हो उठे । उनमेंसे कोई धर्मात्मा यक्ष इस आसन-कम्पसे सुदर्शनपर उपसर्ग होता देखकर उसे नष्ट करनेके लिए शीघ्र ही मृत्यु-स्थलपर आ उपस्थित हुआ और उस शरीरसे मोह छोड़े महात्मा सुदर्शनको वार वार नमस्कार कर उसने उन मारनेवालोंको पत्थरके खंभोंकी भाँति कील दिया । सच है शीलके प्रभावसे धर्मात्मा पुरुषोंको क्या क्या नहीं होता । और तो क्या पर जिसका तीन लोकमें प्राप्त करना कठिन है वह भी शीलव्रतके प्रभावसे सहसा पास आ जाता है । इस शीलके प्रभावसे देवता लोग

नौकर-चाकरोंकी तरह चरणोंकी सेवा करने लगते हैं और सब विघ्न-बाधायें नष्ट हो जाती हैं। जो सच्चे शीलवान् हैं उन्हें देव, दानव, भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी आदि कोई कष्ट नहीं पहुँचा सकता। तब बेचारे मनुष्य—नृकीटकी तो बात ही क्या? वह कौन गिनतीमें?

सुदर्शनने जो दृढ़ शीलव्रतका पालन किया उसके माहात्म्यसे एक यक्षने उसके सब उपसर्ग—सब विघ्न क्षणमात्रमें नष्ट कर उसकी पूजा की। इसका मतलब यह हुआ कि शीलके प्रभावसे दुःख नष्ट होते हैं और सब प्रकारका सुख प्राप्त होता है। तब भव्य-जनो, अपनी आत्मशुद्धिके लिए इस परम पवित्र शीलव्रतको दृढ़ताके साथ तुम भी धारण करो न, जिससे तुमको सब सुखोंकी प्राप्ति हो। देखो, यह शील मुक्तिरूपी स्त्रीको बड़ा प्रिय है और संसारके परिभ्रमणको मिटानेवाला है। जो सुशील हैं—सत्पुरुष हैं वे इस शीलधर्मको बड़ी दृढ़तासे अपनाते हैं—इसका आश्रय लेते हैं, शीलधर्मसे मोक्षका सुख मिलता है। उस पवित्र शीलधर्मके लिए मैं नमस्कार करता हूँ। शीलके बराबर कोई सुधर्मको प्राप्त नहीं करा सकता। जहाँ शील है समझो कि वहाँ सब गुण हैं। और हे शील, मैं तुझमें अपने मनको लगाता हूँ, तू मुझे मुक्तिमें ले चल।

उन मुनिराजोंकी मैं स्तुति करता हूँ जो पवित्र बुद्धिके धारी और शीलव्रतरूपी आभूषणको पहरे हुए हैं, इन्द्र, चक्रवर्ती आदिसे पूज्य और काम-शत्रुके नाश करनेवाले हैं, स्वयं संसार-समुद्रसे

पारको पहुँच चुके हैं और दूसरोंको पहुँचाकर मोक्षका सुख देते हैं तथा जिन्होंने कामदेव-पदके धारी होकर कर्मोंका नाश किया है; वे मुझे भी ऐसा पवित्र आशीर्वाद दें कि जिससे मैं शीलव्रतको बड़ी दृढ़ताके साथ धारण कर सकूँ ।

चौथा परिच्छेद ।

सुदर्शनका धर्म-श्रवण ।

शीलरूपी समुद्रमें निमग्न और मोक्षको प्राप्त हुए सुदर्शन आदि महात्माओंको मैं नमस्कार करता हूँ, वे मुझे सुदृढ़ शील धर्मकी प्राप्ति करावें ।

किसीने जाकर राजासे कहा कि—महाराज, जिन नौकरोंको आपने सुदर्शनको मार आनेके लिए आज्ञा की थी, सुदर्शनने उनको मंत्रसे कील दिया—वे सब पत्थरकी तरह मृत्युस्थलपर कीले हुए खड़े हैं । सुनते ही राजाको बड़ा क्रोध आया । उसने तब और बहुतसे नौकरोंको सुदर्शनके मारडालनेको भेजा । उस यक्षने उन सबको भी पहलेकी तरह कील दिया । उनका कील देना भी जब राजाको मालूम हुआ तब वह क्रोधसे अधीर होकर स्वयं अपनी सेना लेकर सुदर्शनसे युद्ध करनेको पहुँचा । उस यक्षको भी भला तब कैसे चैन पड़ सकता था ।

राजाके आते ही उसने भी मायामई एक विशाल सेना देखते देखते तैयार करली और युद्ध करनेको वह रणभूमिमें उतर आया। दोनों सेनामें व्यूह-रचना हुई। दोनों ओरके वीर योद्धा हाथी, घोड़े आदिपर चढ़कर युद्धभूमिमें उतरे। यक्ष सुदर्शनकी रक्षाके लिए विशेष सावधान हुआ। दोनों सेनाकी मुठभेड़ हुई। बड़ा भयंकर और मृत्युका कारण संग्राम होने लगा। बड़ी देर होगई, पर जयश्रीने किसीका साथ न दिया। दोनों ओरकी सेना कुछ कुछ पीछी हटी। सेनाको पीछी हटती देखकर राजा और यक्ष दोनों ही वीर अपने अपने हाथीपर चढ़कर आमने-सामने हुए। राजाको सामने देखकर यक्षने उसके हितकी इच्छासे कहा—तू जानता है कि मैं कौन हूँ और मेरा बल कितना है? यदि नहीं जानता है तो सुन—मैं मनुष्य नहीं किन्तु विक्रियाऋद्धिका धारी देव हूँ और मेरा बल प्रचण्ड है। मेरे सामने तू मनुष्य-जातिका एक छोटासा कीड़ा है। तब तू विचार देख कि मेरे बलके सामने तू कहाँ तक ठहर सकेगा? इसलिए मैं तुझे समझाता हूँ कि तू व्यर्थ ही मेरे हाथोंसे न मर! तू तो महात्मा सुदर्शनकी चिन्ता छोड़कर सुखसे राज्य कर। राजा क्षत्रिय था और क्षत्रियोंके अभिमानका क्या ठिकाना! उसने तब बड़े गर्वके साथ उस यक्षसे कहा—तू यक्ष है—विक्रियाऋद्धिका धारी देव है तो इसमें आश्चर्य करनेकी कौन बात हुई? पर साथ ही तू क्या यह भूल गया कि राजाओंके तुझसे हजारों देव नौकर हो चुके हैं—गुलाम रह चुके हैं। फिर तुझे अपने तुच्छ देव-पदका इतना अभिमान! यह सचमुच

बड़े आश्चर्यकी बात है। और तुझमें अपार बल है तो उसे बता, केवल गाल फुलानेसे तो कोई अपार बली नहीं हो सकता। नहीं, तो देख, मैं तुझे अपनी भुजाओंका पराक्रम बतलाता हूँ। राजाकी एक देवके सामने इतनी धीरता! यह देखकर यक्ष भी चकित रह गया। इसके बाद उसने कुछ न कहकर राजाके साथ भयंकर युद्ध छेड़ ही दिया। थोड़ी देरतक युद्ध होता रहा, पर जब उसका कुछ फल न निकला तो राजाने क्रोधमें आकर यक्षके हाथीको बाणोंसे खूब बेध दिया। बाणोंकी मारसे हाथी इतना जर्जरित हो गया कि उससे अपना स्थूल शरीर सम्हाला न जा सका—वह पर्वतकी तरह धड़ामसे पृथ्वीपर गिरकर धराशायी हो गया। राजाके इस बढ़े हुए प्रतापको देखकर यक्षको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह तब दूसरे हाथीपर चढ़कर युद्ध करने लगा। अबकी बार उसने राजाके हाथीकी वैसी ही दशा करडाली जैसी राजाने उसके हाथीकी की थी। तब राजा भी दूसरे हाथीपर चढ़कर युद्ध करने लगा। और उसने यक्षके ध्वजा-छत्रको फाड़कर हाथीको भी मार डाला। यक्ष तब एक बड़े भारी रथपर सवार होकर युद्ध करने लगा। दोनोंका बड़ा ही घोर युद्ध हुआ। दोनों अपनी अपनी युद्ध-कुशलता और शर-निक्षेपमें बड़ी ही कमाल करते थे। लोगोंको उसे देखकर आश्चर्य होता था। बेचारे डरपोंक—युद्धके नामसे डरनेवाले लोगोंके डरका तो उस समय क्या पूछना? वे तो मारे डरके मरे जाते थे। दोनोंके इस महा युद्धमें राजाने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे यक्षके रथको छिन्न-भिन्न कर डाला। यक्ष तब जमीनपर ही

लड़ने लगा। अब भी उसे सुरक्षित देखकर राजाको बड़ी वीरश्री चढ़ी। उसने अपना खड्ग निकाल कर इस जोरसे यक्षके सिरपर मारा कि उसका सिर भुट्टेसा दो टुकड़े होकर अलग जा गिरा। यक्षने तब उसी समय विक्रियासे अपने दो रूप बना लिये। राजाने उन दोनोंको भी काट दिया। यक्षने तब चार रूप बना लिये। इस प्रकार राजा ज्यों ज्यों उन बहु संख्यक यक्षोंको काटता जाता था त्यों त्यों वह अपनी दूनी दूनी संख्या बढ़ाता जाता था। फल यह हुआ कि थोड़ी देरमें सारा युद्धस्थल केवल यक्षों ही यक्षोंसे व्याप्त हो गया। जिधर आँख उठाकर देखो उधर यक्ष ही यक्ष देख पड़ते थे। अब तो राजा घबराया। भयसे वह काँपने लगा। आखिर उससे वह भयंकर दृश्य न देखा गया। सो वह युद्धस्थलसे भाग खड़ा हुआ। उसे भागता देखकर वह यक्ष भी उसके पीछे पीछे भागा और राजासे बोला—आः दुरात्मन्, देखता हूँ, अब तू भागकर कहाँ जाता है? जहाँ तू जायगा वहाँ मैं तुझे मार डालूँगा। हाँ एक उपाय तेरी रक्षाका है और वह यह—कि यदि तू महात्मा सुदर्शनकी शरण जाय तो मैं तुझे जीवदान दे सकता हूँ। इसके सिवा और कोई उपाय तेरे जीनेका नहीं है। भयके मारे मर रहा राजा तब लाचार होकर सुदर्शनकी शरणमें पहुँचा और सुदर्शनसे गिड़-गिड़ा कर प्रार्थना करने लगा—कि महापुरुष, मुझे बचाइए, मेरी रक्षा किजिए। मैं अपनी रक्षाके लिए आपकी शरणमें आया हूँ। यह कहकर राजा सुदर्शनके पांवोंमें गिर पड़ा। सुदर्शनने तब हाथ उठाकर यक्षको रोका और उससे पूछा—भाई तू कौन है

और यहाँ क्यों आया? तब उस यक्षने सुदर्शनको बड़ी भक्तिसे नमस्कार कर और बड़े सुन्दर शब्दोंमें उसकी प्रशंसा करना आरंभ की। वह बोला—हे बुद्धिवानोंके शिरोमणि, तू धन्य है, तू बड़े बड़े महात्माओंका गुरु है, और धीरोंमें महा धीर है, धर्मात्माओंमें महा धर्मात्मा और गुणवानोंमें महान् गुणी है, चतुरोंमें महा चतुर और श्रावकोंमें महान् श्रावक है। तेरे समान गंभीर, गुणोंका समुद्र, ब्रह्मचारी, लोकमान्य और पर्वतके समान अचल कोई नहीं देखा जाता। तुझे स्वर्गके देवता भी नमस्कार करते हैं तब औरोंकी तो बात ही क्या। यह तेरे ही शीलका प्रभाव था जो हम लोगोंके आसन कम्पायमान हो गये। देवता आश्चर्यके मारे चकित रह गये। सारे लोकमें एक विलक्षण क्षोभ हो उठा—सब घबरा गये। तूही काम, क्रोध, लोभ, मान, माया आदि शत्रुओं और पञ्चेन्द्रियोंके विषयोंपर विजय प्राप्त करनेवाला संसारका एक महान् विजेता और दुःसह उपसर्गोंका सहनेवाला महान् व्रती है। तेरे ही शीलरूपी मंत्रसे आकृष्ट होकर यहाँ आये मैंने तेरा उपसर्ग दूर किया। मुझे भी इस महान् धर्मकी प्राप्ति हो, इसलिए हे धीर, हे गुणोंके समुद्र, और कष्टके समय भी क्षोभको न प्राप्त होनेवाले—न घबरानेवाले हे सच्चे ब्रह्मचारी, तुझे नमस्कार है। उस धर्मात्मा यक्षने इस प्रकार सुदर्शनकी प्रशंसा और पूजा कर उसपर फूलोंकी वर्षा की, मन्द-सुगन्ध हवा चलाई और नाना भाँतिके मनोहर बाजोंके शब्दोंसे सारा आकाश पूर दिया। इसके सिवा उसने और भी कितनी ऐसी बातें कीं जो आश्चर्य पैदा करती थीं। इन बातोंसे उस यक्षने बहुत पुण्यबन्ध किया।

इसके बाद वह यक्ष अभयमतीकी जितनी नीचता और कुटिलता थी वह सब राजा और सर्वसाधारण लोगोंके सामने प्रगट कर तथा राजाकी जितनी सेना उसकी मायासे हत हुई थी उसे जिलाकर और सुदर्शनके चरणोंको बारंबार नमस्कार कर स्वर्ग चला गया।

अभयमतीको जब यह सुन पड़ा कि एक देवताने सुदर्शनकी रक्षा करली और अपनी जितनी कुटिलता और नीचता थी उसे राजापर प्रगट कर दिया, तब वह राजाके भयसे गलेमें फांसी लगाकर मर गई। उसने पहले जो कुछ पुण्य उपार्जन किया था उसके फलसे वह पाटलीपुत्र या पटनामें एक दुष्ट व्यन्तरी हुई। और वह अभयमतीकी धाय, जो सुदर्शनको मसानसे लाई थी, सुदर्शनके शीलके प्रभावको देखकर राजाके भयसे भागकर पटनामें आ गई। वह यहाँ एक देवदत्ता नामकी वेश्याके पास ठहरी। दो-चार दिन बीतने पर उसने उस वेश्यासे अपना सब हाल कहकर कहा—देखोजी, बुद्धिमान् सुदर्शन बड़ा ही अद्भुत ब्रह्मचारी है! उसने कपिलासी चतुर और सुन्दर स्त्रीको झूठ-मूठ कुछका कुछ समझा कर ठग लिया। एक दिन वह ध्यानमें बैठा था, उस समय मैंने अनेक विकार चेष्टाये कीं, पर तो भी मैं उसे किसी तरह ध्यानसे न डिगा सकी। इसी तरह रानी अभयमतीने उसपर मोहित होकर अनेक उपाय किये और अनेक उपद्रव किये, पर वह भी उसके ब्रह्मचर्यको नष्ट न कर सकी और आखिर मर ही गई। इस प्रकार स्त्रियों द्वारा किये गये सब उपसर्गोंको सहकर वह अपने शील-धर्ममें बड़ा दृढ़ बना रहा। ऐसा विजेता मैंने कोई न देखा।

यह सुनकर दुरभिमानिनी देवदत्ता बोली-तूने कहा यह सब ठीक ही है। क्योंकि वेश्याको छोड़कर और स्त्रियाँ उसके मनको किसी प्रकार विचलित नहीं कर सकतीं। वह कपिला ब्राह्मणी, जो भीख माँग माँगकर पेट भरती है, लोगोंके मनको मोहनेवाले हाव-भाव-विलासोंको क्या जाने ? और वह सदा रनवासमें रहनेवाली बेचारी रानी अभयमती स्त्रियोंके दुर्धर चरित्रों, पुरुषोंके लक्षणों और दासी-पनके कामोंको क्या समझे ? इस प्रकार उन मनकी हँसी उड़ाकर मूर्खिणी देवदत्ताने उस धायके सामने प्रतिज्ञा की—कि देव, तुम लोगोंने भी उस धीर और नर-श्रेष्ठको चाहा और उसे प्राप्त करनेका यत्न किया, पर वह तुम्हारा चाहना और वह यत्न करना नाम मात्रका था। उसे वास्तवमें मैं चाहती हूँ—मेरा उसपर सच्चा प्रेम है और इसीलिए देव, जिस तरह होगा मैं अपनी सब शक्तियोंको लगाकर उसका ब्रह्मचर्य नष्ट करूँगी—और अवश्य नष्ट करूँगी।

इधर राजा सुदर्शनके सामने अपनी निन्दा और उसकी प्रशंसा करने लगा—हे महापुरुष, तू बड़ा ही धीरजवान् है—पर्वतकी धीरताको भी तूने जीत लिया। तू बड़ा शीलवान् धर्मात्मा है। संसारका पूज्य महात्मा है। हे वैश्य-कुल-भूषण, मुझ अविवेकी दुरात्माने स्त्रियोंका चरित न जानकर तेरा बड़ा भारी अपराध किया। मैं तुझसे प्रार्थना करता हूँ कि अपनी दिव्य क्षमा मुझे दानकर मेरे सब अपराधोंको तू क्षमा कर। हे संसारमें श्रेष्ठता पाये हुए, हे देवों द्वारा पूजे जानेवाले और हे सच्चे सुशील, मुझे विश्वास है कि तू

मेरी प्रार्थना स्वीकार कर मुझे अवश्य क्षमा करेगा। इसके सिवा मैं तुझसे एक और प्रार्थना करता हूँ। वह यह कि मैं तेरी इस दृढ़तापर बहुत ही खुश हुआ हूँ, इसलिए मैं तुझे अपना आधा राज्य भेंट करता हूँ। तू इसे स्वीकार कर।

इसके उत्तरमें पुण्यात्मा सुदर्शनने निस्पृहताके साथ कहा कि राजन्, चाहे कोई मेरा शत्रु हो या मित्र, मेरी तो उन सबके साथ पहलेहीसे क्षमा है—मेरा किसीपर क्रोध नहीं। सिर्फ क्रोध है तो मेरे आत्म-शत्रु क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह और इन्द्रियों पर; और उन्हें नष्ट करनेका मैं सदा प्रयत्न भी करता रहता हूँ। यही कारण है कि मैंने जिनभगवानका उपदेश किया और सुखोंका समुद्र उत्तमक्षमा, उत्तममार्दव, उत्तम-आर्जव आदि दसलक्षणरूप धर्म ग्रहण कर रक्खा है। और इस समय जो मुझपर उपद्रव हुए—मुझे कष्ट दिया गया, यह सब तो मेरे पूर्व पापकर्मोंका उदय है। अथवा यों समझिए कि यह भी मेरे महान् पुण्यका उदय था, जो मेरे ब्रह्मचर्य-व्रतकी परीक्षा होगई। राजन्, मेरा तो विश्वास है कि दुःख या सुख, गुण या दुर्गुण, दूषण या भूषण, आदि जितनी बातें हैं वे सब पूर्व कमाये कर्मोंसे होती हैं—उन्हें छोड़कर इन बातोंको कोई नहीं कर सकता। तब मुझपर जो उपद्रव हुए, उसमें तुम तो निमित्त मात्र हो—इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं। अथवा तुम तो मेरे उपकारक हुए। क्योंकि जब मैं मसान भूमिसे लाया गया, तबहीसे मैंने नियम कर लिया था कि यदि इस घोर उपसर्गमें वध-बन्धन आदिसे मेरी मौत हो जाय तब तो

मैं मोक्ष-सुखकी प्राप्तिके लिए इसी समयसे ही चार प्रकारके आहारका त्याग करता हूँ और पूर्व पुण्यसे यदि इस समय मेरी रक्षा हो जाय तो मैं फिर जिनदीक्षा लेकर ही भोजन करूँगा । इसलिए हे महाराज, अब तो परम सुखका कारण जिनदीक्षा ही मैं ग्रहण करूँगा । मुझे तो उस मोक्षके राज्यका लोभ है । फिर मैं आपके इस क्षणस्थायी राज्यको लेकर क्या करूँगा ? इस प्रकार सन्तोषजनक उत्तर देकर सुदर्शन, राजा वगैरहके मना करनेपर भी जिनमन्दिर पहुँचा। उसके साथ राजा वगैरह भी गये । वहाँ उसने विघ्नोंकी नाश करनेवाली और सब प्रकारका सुख देनेवाली रत्नमयी जिन प्रतिमाओंकी बड़ी भक्तिसे पूजा-वन्दना की । इसके बाद वह तीन ज्ञानके धारी और संसारका हित करनेवाले विमलवाहन मुनिराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अपना मन शान्त करनेके लिए उनसे धर्मोपदेश सुननेको बैठ गया । उसके साथ राजा आदि भी बैठ गये । मुनिराजने उसे धर्मामृतका प्यासा—धर्मोपदेश सुननेको उत्कण्ठित देखकर धर्मवृद्धि दी और इस प्रकार धर्मोपदेश करना शुरू किया—सुदर्शन, तू बुद्धिमान् है और इसीलिए मैं तुझे मोक्षसुख देनेवाले जिस मुनिधर्मका उपदेश करूँ, उसका स्वरूप समझकर तू उसे ग्रहण कर । उस धर्मकी कल्पवृक्षके साथ तुलना कर मैं तुझे खुलासा समझा देता हूँ । जरा ध्यानसे सुन । इस धर्मसे तेरे सब उपद्रव–कष्ट नष्ट होंगे और शिव-सुन्दरीकी तुझे प्राप्ति होगी । इसमें किसी तरहका सन्देह नहीं है ।

जैसे वृक्षका मूल भाग होता है वैसे इस धर्मरूपी कल्पवृक्षका मूल है क्रोधादिसे नष्ट न होनेवाली पृथ्वी समान श्रेष्ठ क्षमा। वृक्ष पानीसे सींचा जाता है और यह धर्मरूपी कल्पवृक्ष उत्तम-मार्दवरूपी अमृत-भरे घड़ोंसे, जो सारे जगत्को सन्तुष्ट करते हैं, सींचा जाकर प्रति दिन बढ़ता है। वृक्षके चारों ओर चबूतरा बना दिया जाता है, इस लिए कि वह हवा वगैरहके धक्कोंसे न गिर-पड़े और यह धर्मरूपी वृक्ष उत्तम-आर्जवरूपी सुदृढ़ चबूतरेसे युक्त है। इसलिए इसे माया-प्रपंच-की प्रचण्ड वायु तोड़-मोड़ नहीं सकती—यह सदा एकसा स्थिर बना रहता है। वृक्षके स्कन्ध होता है और यह धर्म-कल्पवृक्ष सत्यरूपी स्कन्धवाला है, जिसे सब पसन्द करते हैं। और इसी कारण यह असत्यरूपी कुठारसे काटा न जाकर बड़ा मजबूत हो जाता है। वृक्षके डालियाँ होती हैं और उनसे वह बहुत विस्तृत हो जाता है, और यह धर्मरूपी कल्पवृक्ष निर्लोभतारूप डालियोंसे शोभित है; और इसी लिए फिर इसका लोभरूपी भील आश्रय नहीं ले पाते—यह चारों ओर खूब बढ़ जाता है। वृक्ष पत्तोंसे युक्त होकर लोगोंके गर्मीका कष्ट दूर करता है और यह धर्म-कल्पवृक्ष दो प्रकार संयमरूप पत्तोंसे, जो सत्पुरुषोंका संसार-ताप मिटाते हैं, युक्त है। इसे असंयमरूपी वायुका वेग कुछ हानि नहीं पहुँचा सकता। यह सदा सघन और शीतलता लिये रहता है। वृक्ष फूलोंसे युक्त होता है और यह धर्म-कल्पवृक्ष बारह प्रकार तपरूपी सुगन्धित फूलोंसे शोभित है।

संसारका आताप मिटानेवाला है और सबको प्रिय है। वृक्ष परिग्रह-फलोंका त्याग करता है और क्यारीमें आये दान-पानीकी अपनी वृद्धिके लिए रक्षा करता है और धर्म-कल्पवृक्ष परिग्रह-धन, धान्य, दासी, दास, सोना, चाँदी आदिका त्याग करता है और आहार, औषधि, अभय और ज्ञान इन चार प्रकारके दानोंकी रक्षा करता है-इन दानोंको देता है। इसलिए वह तबतक बढ़ता ही जाता है जबतक कि मोक्ष न प्राप्त हो जाय। वृक्ष ऋतुका सम्बन्ध पाकर फलते हैं और उन फलोंको लोगोंको देते हैं; और धर्म-कल्पवृक्ष आकिंचन्य-परिग्रह-रहितपनारूप ऋतुका सम्बन्ध पाकर निर्ममत्व-भावसे लोगोंको स्वर्ग-मोक्षका फल देता है। वृक्ष अपने स्थूल शरीरसे बढ़कर परिपूर्णता लाभ करता है और मनचाहे सुन्दर फलोंको देता है और धर्म-कल्पवृक्ष ब्रह्मचर्यरूपी तेजस्वी शरीरसे बड़ा होकर परिपूर्णता लाभ करता है और धर्मात्माओंको सर्वार्थसिद्धि आदिका सुख देता है। सुदर्शन, इस प्रकार उत्तम-क्षमादि दसलक्षणमय धर्म-कल्पवृक्षका तुझे मोक्षरूपी फलकी प्राप्तिके लिए सेवन करना चाहिए। यह मोह संसारके जीवोंको महान् कष्ट देनेवाला है। इसलिए वैराग्य-खड्गसे इसे मारकर पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति और मुनियोंके मूल-गुण तथा उत्तरगुण, इसके सिवा रत्नत्रय आदिक तप, जो धर्मके मूल हैं, इन सबको तू धारण कर। यह यतिधर्म महान् सुखका कारण है।

मैं चाहता हूँ कि तुझसे बुद्धिमान् धर्मको सदा धारण करें–उसका आश्रय लें। धर्मके द्वारा मोक्ष-मार्गका आचरण करें। धर्म प्राप्तिके लिए दीक्षा लें। तुझे खूब याद रखना चाहिए कि एक धर्मको छोड़कर कोई तुझे मोक्षका सुख प्राप्त नहीं करा सकता। इसलिए तू धर्मके मूलको प्राप्त करनेका यत्न कर--धर्ममें सदा स्थिर रह। और धर्मसे यह प्रार्थना कर कि हे धर्म, तू मुझे मोक्ष प्राप्त करा। क्योंकि यही धर्म इन्द्र, चक्रवर्त्ती आदिका पद और मोक्षका देनेवाला है, अनन्त गुणोंका स्थान और संसारका भ्रमण मिटानेवाला है, पापोंका नाश करनेवाला और सब सुखोंका देनेवाला है, दुःखोंका नाशक और मनचाही वस्तुओंको देनेवाला है। इस धर्मको बड़े आदरसे मैं स्वीकार करता हूँ। वह मुझे मोक्षका सुख दे।

पाँचवाँ परिच्छेद।

सुदर्शन और मनोरमाके भव।

मैं सुख–मोक्ष प्राप्तिके लिए पाँचों परमेष्ठीको नमस्कार करता हूँ। वे धर्मतीर्थके चलानेवाले, जगत्पूज्य और सब सुखोंके देनेवाले हैं।

सुदर्शन विमलवाहन मुनिराजके मुख-चन्द्रमासे झरा धर्मामृत पी-कर बहुत सन्तुष्ट हुआ। इसके बाद उसने उनसे पूछा–योगि-राज, मैं जानता हूँ कि स्नेह–प्रेम धर्ममें बाधा करनेवाला है,

पर तो भी न जाने क्यों मनोरमापर मेरा इतना अधिक प्रेम है ? इसका कारण कृपाकर आप बतलाइएं । और यह भी बतलाइए कि मैं किस पुण्यके उदयसे ऐसा धनी, सुन्दर और कामदेव-पदका धारी हुआ ? सुदर्शनके इस प्रश्नको सुनकर मुनिराजने अपनी दिव्य वाणी द्वारा पुण्य-पापका फल बतलाते हुए यों कहना आरंभ किया। इसलिए कि उससे भव्यजनोंका उपकार हो। सुदर्शन, तेरी पूर्व जन्मकी कथा बड़ी ही वैराग्य पैदा करनेवाली है, इसलिए तू उसे जरा सावधान मनसे सुन । (राजा वगैरहकी ओर इशारा करके) और आप लोग भी जरा अपने मनको इधर लगावें।

"इस भरतक्षेत्रमें बसे हुए आर्यखण्डमें वन्ध्य नाम एक प्रसिद्ध देश है। धर्म-साधन और सुख-साधनके कारणोंसे वह युक्त है। उसमें काशीकोशल नामका एक बड़ा ही सुन्दर नगर था। उसके राजाका नाम भूपाल था। भूपालकी रानीका नाम वसुंधरा था। उनके एक लड़का था। उसका नाम था लोकपाल। वह बड़ा प्रतापी था।

एक दिन राजा राजसभामें सिंहासनपर बैठे हुए थे। उनके पास उनका पुत्र लोकपाल तथा मंत्री आदि भी बैठे हुए थे। इतनेमें राजमहलके खास दरवाजेपर राजाने प्रजाके कुछ लोगोंको कष्टसे रोते-गुहार मचाते हुए देखा। देखकर राजाने अपने पास ही बैठे हुए अनन्तबुद्धि मंत्रीको पूछा—देखो तो ये लोग ऐसे क्यों चिल्ला रहे हैं ? अनन्तबुद्धिने राजासे कहा—महाराज, यहाँसे दक्षिणकी ओर विन्ध्यगिरि नामका

एक विशाल पर्वत है । उसमें व्याघ्र नाम एक भीलोंका राजा रहता है । उसकी स्त्रीका नाम कुरंगी है । वह राजा बड़ा दुष्ट है । सदा प्रजाको कष्ट दिया करता है । उस कष्टको दूर करनेके लिए प्रजा आपसे प्रार्थना करनेको आई है । सुनकर राजाने उसी समय सेनापति अनन्तको फौज लेकर उसपर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी । सेनापति बड़ी भारी सेना लेकर विन्ध्यगिरिपर पहुँचा । भीलराजके साथ उसका घोर युद्ध हुआ । परन्तु पापका उदय होनेसे जयलक्ष्मी अनन्तको न मिलकर भीलराजको मिली । भीलराजके इस प्रकार बलवान् होनेकी जब भूपालको खबर मिली तो अबकी बार वे स्वयं लड़ाईपर जानेको तैयार हुए । पिताकी यह तैयारी देखकर उनके पुत्र लोकपालने उन्हें रोककर आप संग्रामके लिए भीलराज-पर जा चढ़ा । दोनोंका बड़ा भारी युद्ध हुआ । राजकुमार लोक-पालने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे व्याघ्रराजको मारकर विजयलक्ष्मी प्राप्त की ।

इधर भीलराज पापके उदयसे बड़े बुरे भावोंसे मरकर वत्स-देशके किसी छोटे गाँवमें कुत्ता हुआ । वहाँसे वह एक ग्वालिनके साथ साथ कौशाम्बीमें आ-गया । वहाँ वह एक जिनमन्दिरके मुहल्लेमें रहने लगा । पापके उदयसे वहाँसे मरकर वह चम्पा-नगरीमें प्रियसिंह और उसकी स्त्री सिंहनीके लोध्र नामका पुत्र हुआ । अशुभ कर्मोंके उदयसे उसके माता-पिता बालपनमें ही मर गये । वह अनाथ होगया । कोई इसकी साल-सम्हाल करनेवाला न

रहा । मातृ-सुख रहित होकर, भूख-प्यासका उसने बहुत कष्ट सहा । आखिर अशुभ कर्मने उसे भी माता-पिताका साथी बना दिया ।

इसी चम्पानगरीमें एक महा धनी वृषभदास सेठ रहता था । उसकी स्त्रीका नाम जिनमती था । उनके यहाँ एक ग्वाल था । वह बड़ा खूबसूरत था—भव्य था । बड़ा सीधा-साधा और बुद्धिमान था । वह ग्वाल उसी लोधका जीव था ।

एक दिन सूर्यके अस्त होनेका समय था । ठंड खूब पड़ रही थी । उस समय वह ग्वाल अपने घरपर आ रहा था । रास्तेमें उसे एक चौराहा पड़ा । वहाँ उसने एक मुनिराजको ध्यान करते देखे । वे अनेक ऋद्धियोंसे युक्त थे । उस समय एकत्वभावनाका विचार कर रहे थे । आत्म-ध्यानसे उत्पन्न होनेवाले परम सुखमें वे लीन थे । महा धीर-वीर थे । एकाविहारी थे । ध्येय उनका था केवल मुक्ति-प्रियाकी प्राप्ति । वे रागद्वेषसे रहित थे । धर्मध्यान और शुक्लध्यानके द्वारा अपने हृदयको उन्होंने दोनों ध्यानमय बना लिया था । दोनों प्रकारके परिग्रहसे वे रहित थे । द्रव्यकर्म और भावकर्म इन दोनों कर्मोंके नाश करनेके लिए उनका पूर्ण प्रयत्न था । वे रत्नत्रयसे भूपित थे । माया, मिथ्या और निदान इन तीन प्रकारके शल्यसे रहित थे । वे तीनों वार सामायिक करते थे, त्रिकालयोग धारण करते थे और सबके उपकारी—हितैषी थे । क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी चारों शत्रुओंके नाश करनेवाले और चारों आराधनाओंकी आराधना करनेवाले थे

पञ्चास्तिकायके जाननेवाले और पाँचवीं सिद्धगतिका ध्यान करनेवाले थे। पाँचों परमेष्ठियोंकी सेवा करनेवाले और पाँचों इन्द्रियोंके विषयोंके घातक थे। छहों द्रव्योंके स्वरूपको अच्छे जाननेवाले और छहों प्रकारके जीवोंकी रक्षा करनेवाले थे। मुनियोंके सामायिकादि छह आवश्यक हैं, उनके करनेवाले और छहों अनायतन—कुदेव-कुगुरु-कुधर्मकी सेवा और उनके माननेवालोंकी प्रशंसा, इन-से रहित थे। सातों तत्वोंके स्वरूपके जाननेवाले और सातों भयोंसे रहित थे। सातवें गुणस्थानके धारी और सातों ऋद्धियोंको प्राप्त करनेवाले थे। आठ कर्मरूपी शत्रुओंके घातक और सिद्धोंके आठ गुणोंके चाहनेवाले थे, आठवीं पृथ्वी—मोक्षके मार्गमें स्थित थे। नौं पदार्थोंके सार-मतलबको जाननेवाले और ब्रह्मचर्यकी नौं बाढ़—दोषोंसे रहित थे। उत्तमक्षमा आदि दस धर्मोंके पालनेवाले और दस प्रकारके ध्यानमें अपने मनको लगानेवाले थे। ग्यारह प्रतिमाओंका श्रावकोंको उपदेश करनेवाले और बारह प्रकार तपके करनेवाले महान् साधु थे। तेरह प्रकार चारित्रके पालनेवाले और चौदह गुणस्थान, चौदह जीव समासोंके जाननेवाले थे। पन्द्रह प्रकारके प्रमाद रहित और सोलहकारणभावनाओंके भानेवाले थे। हृदयके वे बड़े पवित्र थे। निस्पृह थे। वनवासी थे। भव्यजनोंका हित करनेके लिए वे सदा तत्पर रहते थे। उनके चरणकमलोंकी सब पूजा करते थे—उन्हें सब मानते थे। इन गुणोंके सिवा उनमें और भी अनन्त गुण थे। शीलके वे समुद्र थे, परम धीरजवान् थे और ठंडसे जैसे वृक्ष जलकर विवर्ण हो जाता है वैसे ही वे हो रहे थे। उन परम तपस्वी योगिराजको

देखकर उस ग्वालको बड़ी दया आई। उसने अपने मनमें कहा—अहा, ऐसी जोरकी ठंड और ओस गिर रही है और इनके पास कोई वस्त्र नहीं, तब ये सारी रात कैसे बितावेंगे ? मेरे पास ज्यादा वस्त्र नहीं जो उसे ओढ़ाकर इनकी ठंड वगैरहसे रक्षा करदूँ । तब क्या करूँ कुछ सूझ नहीं पड़ता । इसके बाद ही उसे एक उपाय सूझ गया। वह मुनिभक्तिके वश होकर उसी समय अपने घर जाकर लकड़ियोंका एक भारी गट्ठा बाँध लाया और साथमें थोड़ीसी आग भी लेता आया। मुनिराजके पास उसने आग जलाई, जिससे उन्हें उसकी गरमी पहुँ-चती रहे। और आप उनके पाँवोंके पास बैठकर थोड़ी थोड़ी लकड़ी उस आगमें जलाता गया। इसी तरह करते उसे सारी रात बीत गई । ग्वालने मुनिराजकी शीत-बाधा अवश्य दूर की, पर इससे वे खुश हुए हों, सो नहीं । कारण चाहे दुःख हो या सुख, वीत-रागी मुनियोंको उसमें न द्वेष होता है और न प्रेम होता है—उनके लिए तो दोनों दशा एकसी होती हैं—दोनोंमें उनके समभाव होते हैं और ऐसे ही मुनि कर्मोंका नाश कर सकते हैं। और जो दुःखोंसे डरकर सुखकी चाह करते हैं वे कभी कर्मोंका नाश नहीं कर सकते।

सूर्योदय हुआ। योगिराजने उस ग्वालको भव्य समझकर हाथके इशारेसे उठाया और इस प्रकार धर्मोपदेश दिया—"वत्स, मैं तुझे जो कुछ कहूँ, उसे सावधानीसे सुनकर उसपर चलनेका यत्न करना । उससे तुझे बहुत कुछ लाभ होगा। देख, तू जो कुछ काम करे, वह फिर छोटा हो या बड़ा, उसे शुरू करनेके पहले तू

" णमो अरहंताणं " इस मंत्रको एक वार याद कर लिया करना। इस महामंत्रमें अर्हन्त भगवान्‌को नमस्कार किया है। इससे तू जो चाहेगा वही तुझे प्राप्त होगा।" इस प्रकार उस ग्वालको समझा कर और उसपर उसका विश्वास हो–प्रेम हो, इसके लिए आप स्वयं भी " णमो अरंहताणं " कहकर वे आकाशमें गमन कर गये। उन्हें आकाशमें जाते देखकर उसने समझा मुनिराज इसी मंत्रके प्रभावसे आकाशमें चले गये। मंत्रके इस साक्षात् फलको देखकर वह बड़ा खुश हुआ। उसने तब मनमें विचारा–अहा, जैसे ये मुनिराज इस महामंत्रके उच्चारण मात्रसे ही आकाशमें चले गये वैसे मैं भी तब इस मंत्रकी शक्तिसे आकाशमें उड़ सकूँगा। इस विचारने उसके कोमल–सरल हृदयमें मंत्र जपनेकी पवित्र श्रद्धाको खूब ही बढ़ा दिया। इसके बाद वह इस मंत्रका ध्यान करता हुआ अपने घर पहुँचा। अबसे वह जो कुछ भी काम करता उसके पहले इस मंत्रका स्मरण कर लिया करता था। इस प्रकार मंत्रका स्मरण करते देखकर एक दिन उसके मालिक वृषभदासने उससे पूछा–क्योंरे, तू जो रोज रोज ' णमो अरहंताणं ' इस मंत्रका स्मरण किया करता है, इसका क्या कारण है ? ग्वालने तब मुनिराजकी शीत बाधाका दूर करना और उनके द्वारा अपनेको मंत्र-लाभ होना आदि, सब बातें आदिसे इतिपर्यन्त सेठको सुना दीं। सुनकर सेठ बड़े खुश हुए और उन्होंने उसकी प्रशंसा कर कहा–भाई, तू धन्य है। तेरा यह धर्म-प्रेम देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई। इस मंत्र-लाभसे तेरा जन्म सफल होगया। इस मंत्रके जपनेसे तू दोनों लोकमें सुख लाभ

करेगा-तुझे उत्तम गति प्राप्त होगी। इस प्रकार सेठने उसकी प्रशंसा कर बड़े प्रेमसे उसे भोजन कराया और अच्छे अच्छे वस्त्राभूषण उपहार दिये। सच है धर्मका जब इस लोकमें भी महान् फल मिलता है-धर्मात्मा पुरुष लोगों द्वारा आदर-सत्कार, पूजा-प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं तब परलोकमें वे धर्मके फलसे धन-दौलत, राज्य-वैभव, स्वर्ग-मोक्ष आदिका सुख प्राप्त करें तो इसमें आश्चर्य क्या।

एक दिन वह ग्वाल भैंसें चरानेको जंगलमें गया था। किसी मनुष्यने आकर उससे कहा-भाई, तेरी भैंसें तो गंगाके उस पार चली गईं। यह सुनकर वह उन्हें लौटानेको दौड़ा और उस महामंत्रका स्मरण कर झटसे नदीमें कूद पड़ा। जहाँ वह कूदा वहाँ एक तीखा लकड़ा गड़ा हुआ था। सो उसके कोई ऐसा पापका उदय आया कि उससे उसका पेट फट गया। मरते हुए उसने निदान किया-इस महामंत्रके फलसे मैं इन सेठके यहीं पुत्र-जन्म लूँ! वह मरकर फिर उस निदानके फलसे तू अत्यन्त सुन्दर कामदेव हुआ। सुदर्शन, यह कामदेवपना, यह अलौकिक धीरता, यह दिव्य रूप-सुन्दरता, यह मान-मर्यादा, यह अनन्त यश, ये उत्तम उत्तम गुण, और यह एकसे एक बढ़कर सुख आदि जितनी बातें तुझे प्राप्त हैं वे सब एक इसी महामंत्रका फल है। सुदर्शन, इस अर्हन्त भगवान्‌के नाम-स्मरणरूप महामंत्रके प्रभावसे अर्हन्तोंकी श्रेष्ठ विभूति प्राप्त होती है, और शुद्ध सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिका लाभ होकर जगत्पूज्य मुक्ति प्राप्त होती है। तीन लोककी लक्ष्मी इस मंत्रका ध्यान करनेवाले

धर्मात्मा पुरुषोंकी दासी हो जाती है। इन्द्र, अहमिंद्र, चक्रवर्ती, बलभद्र आदि जितने महान् पद हैं वे सब इस मंत्रका स्मरण करनेवाले बड़ी आसानीसे लाभ करते हैं। धर्मात्मा पुरुषोंको स्वर्ग या चक्रवर्ती आदिकी सम्पत्ति बड़ी उत्कण्ठाके साथ वरती है। विघ्न, दुष्ट राजा, भूत-पिशाच, शाकिनी-डाकिनी आदिके द्वारा दिये गये कष्ट—वगैरह, मंत्रसे कीले हुए सर्पकी तरह सत्पुरुषोंको कभी नहीं सता सकते। अनेक प्रकारकी तकलीफें देनेवाले महा पाप इस मंत्रकी आराधना करनेवालेके इस तरह नष्ट होते हैं जैसे सूर्यसे अंधकार। सोना जैसे आगसे शुद्धि लाभ करता है उसी तरह जो लोग पापी हैं—कलंकित हैं वे इस मंत्रके ध्यानरूपी अग्निसे परम शुद्धि लाभ करते हैं। इस मंत्रके प्रभावसे शत्रु मित्र बन जाते हैं; दुष्ट, क्रूर भूत-पिशाच आदि वश हो जाते है; भयंकर सर्प गलेका हार हो जाता है, कितना ही तेज विष क्यों न हो वह फौरन उतर जाता है और तलवार फूलोंकी माला हो जाती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं जो इस महामंत्रकी शक्तिसे विपत्तियाँ सम्पत्तिके रूपमें और दुःख सुखके रूपमें परिणत हो जाय और सिंह, व्याघ्र आदि भयंकर जीव वश हो जायँ। इस मंत्रका प्रभाव तो देखिए, जिन्होंने जीवनभर सातों व्यसनोंका सेवन किया; हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापोंको किया वे लोग भी इस मंत्रके स्मरणसे—केवल मृत्यु समय प्राप्त हुए मंत्रका ध्यान कर स्वर्ग गये, कितने मोक्ष गये। सुदर्शन, यह मंत्र कल्पनाके अनुसार तमाम सुख देनेवाला है—इसलिए कल्पवृक्ष है,

चिन्तित वस्तुका देनेवाला है—इसलिए अमोल चिन्तामणि है, सब भोगोपभोगकी सामग्रीका देनेवाला है—इसलिए अक्षय निधि है और कामना किये हुए अर्थका देनेवाला है—इसलिए कामधेनु है। जैसे परमाणुसे कोई छोटा नहीं और आकाशसे कोई बड़ा नहीं, उसी भाँति इस महामंत्रके समान संसारमें कोई मंत्र नहीं, जो सब सिद्धियोंका देनेवाला हो। क्षुद्र विद्या और स्तंभनादिक जितने मंत्र यंत्र हैं, सब इस अर्हन्त भगवान्के ध्यानरूप मंत्रके प्रभावसे बे-कामके हो जाते हैं। इस मंत्रके प्रभावसे वश हुई मुक्तिश्री उस धर्मात्माको, जिसने इस मंत्रकी आराधना की है, कन्याकी तरह स्वयं वरती है—अपना स्वामी बनाती है—इस मंत्रका ध्यान करनेवाला अवश्य मोक्ष जाता है। तब स्वर्गकी देवकुमारियाँ उस पुरुषको चाहें तो इसमें आश्चर्य क्या। मतलब यह कि इस मंत्रका मुख्य फल मोक्ष है और स्वर्गीय सुखोंका प्राप्त होना गौण फल है। मेरी समझके अनुसार इस परम-मंत्रका जो प्रभाव है उसे पूर्णपने यदि कोई कह सकते हैं तो वे केवली भगवान्, और कोई कहने समर्थ नहीं।

सुदर्शन, इस मंत्रके 'अर्हन्त' पदमें एक और विशेषता है। वह यह कि इसमें पाँचों ही परमेष्ठी गर्भित हैं। सकल परमात्मा अर्हन्त भगवान् तो सिद्ध हैं, वे पंचाचारका उपदेश देते हैं—इसलिए आचार्य हैं; दिव्यध्वनि द्वारा सब पदार्थोंका स्वरूप कहते हैं—इसलिए उपाध्याय हैं और मुक्तिरूपी स्त्रीकी साधना करनेसे परम

साधु हैं। इस प्रकार पाँचों परमेष्ठीके सब गुणोंसे युक्त यह मंत्र सब मंत्रोंका महान् मंत्र है। इसकी उपमाको कोई मंत्र नहीं पा सकता। ऐसे महा मंत्ररूप अर्हन्त पदका ध्यान करनेसे यह सब सिद्धियोंको देता है। क्योंकि इसका ध्यान करनेसे पाँचों ही परमेष्ठीका ध्यान हो जाता है। सुदर्शन, जो मोक्षके सुखकी इच्छा करते हैं उन्हें इस अर्हन्त भगवान्के उच्च गुण-स्वरूप और सत्यके प्राप्त करानेवाले नमस्कार-गर्भित पवित्र मंत्रका मन-वचन-कायके योगपूर्वक सब अवस्थाओंमें—सुखमें, दुखमें, भयमें, मार्गमें, समुद्रमें, घोर युद्धमें, पर्वतमें, आग लगनेपर, या आगके और कोई उपद्रवमें, सोते समय, सर्प-व्याघ्र आदि हिंसक जीवों द्वारा दिये गये कष्टमें, चोरोंके उपद्रवमें, असाध्य रोगमें, मृत्युके समय, या और किसी प्रकारके कष्ट या विघ्नोंके उपस्थित होनेपर—ध्यान करना चाहिए। यह महान् मंत्र है, इसका प्रभाव सबसे बड़ा चढ़ा है। अर्हन्त भगवान्के सब उच्च गुण इसमें समाये हुए हैं। यह सत्यका प्राप्त करानेवाला है। इसलिए पापोंका नाश और मोक्षका सुख प्राप्त करनेके लिए इस मंत्रको हृदयसे और वचनसे कभी न भुलाना चाहिए—प्रतिदिन इसका ध्यान- आराधन करते रहना उचित है—कर्त्तव्य है।

इस मंत्रका ऐसा उत्कृष्ट माहात्म्य सुनकर सुदर्शन, राजा और प्रजाजन बड़े खुश हुए। उनमेंसे कितनोंने इस महा-मंत्रकी एक हजार जाप प्रतिदिन करनेकी प्रतिज्ञा की, कितनोंने दो हजारकी, कितनोंने चार हजारकी और

कितनोंने दस हजारकी । कुछ लोगोंने सब प्रकारकी बात-चीत करना छोड़कर मौनपूर्वक एक एक लाख जाप करनेका संकल्प किया ।

सुदर्शन, पूर्व भवमें तुम्हारी जो कुरंगी नामकी स्त्री थी, वह बुरे परिणामोंसे मरकर बनारसमें भैंस हुई । उस पर्यायमें उसने बड़ी बड़ी तकलीफें उठाईं। तिर्यंचगतिके दुस्सह दुःखोंको चिर कालतक भोगा । फिर जब उसका पापकर्म कुछ हलका हुआ तो वह वहाँसे मरकर इसी चम्पानगरीमें साँवल नामके धोबीकी स्त्री यशोमतीके वत्सिनी नाम लड़की हुई ।

काललब्धिसे एक दिन उसे आर्यिकाओंका संघ मिल गया । उसने बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे उन सब आर्यिकाओंकी वन्दना की । संघकी प्रधान आर्यिकाको उसकी दशापर बड़ी दया आई । उसने इससे कहा—बेटा, तुझे धर्मके ग्रहण करनेका सम्बन्ध अबतक न मिला । देख, यह उसी पापका फल है जो तू ऐसे दरिद्र, मदिरा-मांस खानेवाले, और पापके कारण नीच कुलमें पैदा हुई । इसलिए अब तुझे उचित है कि तू इस पवित्र धर्मको ग्रहण कर, जिससे तुझे इस भवमें सुख-सम्पत्ति और परभवमें अच्छी गति, अच्छा कुल और रूप-सौभाग्य प्राप्त हो । उस धर्मका संक्षेप स्वरूप है—पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, इन बारह व्रतोंका पालना, रातमें भोजनका त्याग करना, उपवास करना, दान देना, पंच नमस्कार मंत्रकी आराधना करना और जैनधर्मपर विश्वास करना । इन पवित्र आचार-विचारोंसे तुझे धर्मकी प्राप्ति हो सकेगी।

आर्यिकाके उपदेशपर उसकी बड़ी श्रद्धा होगई। उसने उसके उपदेशानुसार मांस-मदिरा आदिका खाना छोड़ दिया, त्रस जीवोंकी हिंसा करनी छोड़ दी और अपने अनुकूल व्रतोंको ग्रहण कर वह अब उन आर्यिकाओंके ही साथ रहने लगी। सुदर्शन, उनके साथ रहकर उसने जो पवित्रता लाभ की उससे और व्रत-पालनसे उसे जो पुण्यबन्ध हुआ उसके प्रभावसे वह शुभ परिणामोंसे मर कर यह तेरी रूप-सौभाग्यवती और बड़ी धर्मशील स्त्री मनोरमा हुई है और यही कारण है कि इसका तुझपर और तेरा इसपर अत्यधिक प्रेम है। सुदर्शन, ये प्रेम, मित्रता, शत्रुता आदि जितनी बातें हैं वे सब पूर्व जन्मके संस्कारसे हुआ करती हैं, इसलिए बुद्धिमानोंको इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं।

इस प्रकार विमलवाहन मुनिराजके मुँहसे सुदर्शन अपने पुण्य-पापके फलरूप पूर्व जन्मोंका वर्णन सुनकर संसार-दुःखके कारण पापाचरणसे बड़ा डरा और इसीलिए वह जिनदीक्षा लेनेको तैयार होगया।

एक ग्वालेने—क्षुद्र कुलमें जन्मे मनुष्यने "णमो अरहंताणं" इस मंत्रकी आराधना की। उसके प्रभावसे वह बड़ा भारी सेठ हुआ, गुणी हुआ, महान् धीरजवान् हुआ, चरमांगधारी—उसी भवसे मोक्ष जानेवाला हुआ; और अन्तमें मोक्ष प्राप्तिके कारण वैराग्यको प्राप्त होकर मुनि होगया। तब भव्यजनो, तुम भी इस महान् पंच नमस्कार-मंत्रका मनोयोगपूर्वक ध्यान करो, जिससे तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो सके।

उन अर्हन्त भगवान्‌को, जो संसारके बुद्धिमानों द्वारा पूज्य और इन्द्रिय तथा मोक्ष सुखके देनेवाले हैं, उन सिद्धभगवान्‌को, जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि आठ गुणोंके धारक और शरीररहित हैं, उन आचार्यको, जो सदा पंचाचारके पालनेमें तत्पर रहते हैं, उन उपाध्यायको, जो पठन-पाठनमें लगे रहते हैं और उन साधुको, जो निस्पृही और परम वीतरागी हैं, मैं नमस्कार करता हूँ। वे मुझे अपने अपने गुण प्रदान करें।

छठा परिच्छेद।

सुदर्शनकी तपस्या।

जिन्हें इन्द्र, धरणेन्द्र, और चक्रवर्त्ती आदि संसारके महापुरुष पूजते हैं, और जो संसार-समुद्रमें वहते हुए अतएव अवलम्बन रहित—निराधार प्राणियोंको सहारा देकर पार करते हैं—सब सुखोंको देते हैं, उन पाँचों परमेष्ठियोंको मैं श्रद्धा पूर्वक नमस्कार करता हूँ।

विमलवाहन मुनिराजके द्वारा अपने और मनोरमाके भवोंको सुनकर सुदर्शन संसार-भ्रमणके कारणपर यों विचार करने लगा—

संसार बड़ा ही दुर्गम है, महा भयानक है। इसमें सुखका नाम भी नहीं; किन्तु यह उल्टा अनन्त दुःखोंसे परिपूर्ण है। तब सत्पुरुष इससे कैसे प्रेम कर सकते हैं। पाप-कर्मरूपी साँकलसे बँधे और विषयरूपी शत्रुओंसे ठगे गये प्राणी धर्म-कर्म रहित हो अनादि कालसे इसमें घूमते-फिरते हैं, पर अबतक वे इसके पार न हुए।

इसमें भ्रमण करानेवाले पाप-कर्म जीवोंके लिए बड़े ही अनर्थके करनेवाले हैं। इन संतति-क्रमसे चले आये कर्मोंका कारण मिथ्यात्व है। वह मोक्ष-मार्गका नष्ट करनेवाला और महान् दुःखोंका देनेवाला है। उसे सहसा छोड़ देना बड़ा ही कठिन है। उसके पाँच भेद हैं। एकान्त, विनय, विपरीत, सांशयिक और अज्ञान। ये पाँचों ही मिथ्यात्व महानिंद्य हैं, हलाहल विष हैं। इनके सम्बन्धसे संसार बढ़ता है, पाप बढ़ता है और अनन्त दुःख उठाने पड़ते हैं। इसलिए जो धर्मात्मा हैं, धर्म-लाभ चाहते हैं, उन्हें सम्यक्त्व ग्रहण कर इस मिथ्यात्व शत्रुका नाश कर देना चाहिए। नहीं तो इस मिथ्यात्वसे उनके धर्माचार—दर्शन, ज्ञान और चारित्र आदि गुण, जो संसारके उत्तमोत्तम सुखके कारण हैं, जहरसे नष्ट होनेवाले दूधकी भाँति बहुत शीघ्र नष्ट हो जायँगे। कारण यह मिथ्यात्व-शत्रु बड़ा ही दुर्जय है, पापका समुद्र है, संसारको दुःख देनेवाला है। इसे तो नष्ट करनेमें ही आत्म-हित है।

इसके सिवा पाँच इन्द्रिय और मन इन छहोंकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति और पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति और त्रस इन छहों प्रकारके जीवोंकी प्रमादसे विराधना—हिंसा, ये बारह अव्रत कहे जाते हैं। ये पापके खान हैं और संसारके बढ़ानेवाले हैं। इसलिए जो अपना आत्महित चाहते हैं, उन्हें व्रत, संयम आदिके द्वारा इन अव्रतोंको छोड़नेका यत्न करना चाहिए।

संसारके बढ़ानेवाले पाँचों इन्द्रियोंके विषय भी हैं। सो जो सच्चे सुखकी इच्छा करते हैं, वे इन विषयरूपी चोरोंको वैराग्यकी

इसीलिए खूब मजबूत बाँधकर तपस्यारूपी कैदखानेमें डाल देते हैं। फिर वे इनको कुछ हानि नहीं पहुँचा सकते। और जो बेचारे इन महान् धूर्तोंके फन्देमें फँस जाते हैं, उनकी सब विवेक-बुद्धि नष्ट हो जाती है। फिर वे स्त्रियोंके साथ विषय-भोगोंमें, जो अनन्त दुःखोंके देनेवाले हैं, सुख देखने लगते हैं। पर असलमें ये विषय-भोग बड़े दुष्ट हैं, धूर्त हैं और संसारको बोरनेमें डालनेवाले हैं। इसलिए बुद्धिमा-नोंको चाहिए कि वे व्रत-संयमरूपी तलवारसे शत्रुओंकी भाँति इन्हें नष्ट करनेका यत्न करें। जो मूढ़ हैं—जिन्हें हिताहितका ज्ञान नहीं, वे ही इन पापके मूल, अशुभ, और अन्तमें अत्यन्त तीव्र दुःखके देनेवाले और दुःखके मूल कारण विषय-भोगोंको भोगते हैं। जिन विषयोंको पशु-म्लेच्छ आदि भोगते हैं उन्हें बुद्धिमान् लोग कैसे अच्छे समझें। उनसे सिवा अपने और स्त्रियोंके शरीर नष्ट होने, शक्ति नष्ट होने और दुःख होनेके, कुछ लाभ नहीं। इन विषयोंका सेवन तो किया जाता है काम-शान्तिके लिए, पर ज्यों ज्यों वे भोगे जाते हैं त्यों त्यों कामाग्नि शान्त न होकर उलटी अधिक अधिक बढ़ती जाती है। तब बुद्धिमानोंको यह समझकर, कि ये विषय सर्व अनर्थोंके करनेवाले और बड़े दुष्ट हैं, इनके छोड़नेका यत्न करना चाहिए। जैसे कि रोगके मिटानेका यत्न किया जाता है। जिस संसारमें सुख समझकर विषयी मूर्ख लोग शरीर द्वारा विषयोंका सेवन करते हैं, वह संसार महानिन्द्य है, तमाम अपवित्रताओंका स्थान है। और यह शरीर भी महा बुरा है, एक मिट्टी-गढ़ी झोंपड़ीके समान है।

इसमें भूख-प्यासरूपी आग जल रही है। काम, क्रोध, लोभ, मान, मायारूपी भयंकर सर्पोंने अपने रहनेका इसे बिल बना लिया है और एक ओर धर्म-रत्नके चुरानेवाले पंचेन्द्रियरूपी चोरोंने इसमें अपना डेरा डाल रक्खा है। तब ऐसी जगह कौन बुद्धिमान् एक क्षणभरके लिए भी रहना पसन्द करेगा ! इस शरीरका पाना तो उन्हीं लोगोंका सफल है जिन्होंने स्वर्ग, मोक्ष और धर्मकी प्राप्तिके लिए कठिनसे कठिन तप कर शरीरको कष्ट दिया, औरोंका नहीं। यह जानकर इस असार शरीर द्वारा स्वर्ग, मोक्ष और आत्म-कल्याणका परम कारण निर्दोष तप करना चाहिए।

सबमें मन बड़ा ही चंचल है। शरीर और इन्द्रियरूपी नौकरोंका राजा है। इसीकी प्रेरणासे इन्द्रियाँ विषयोंकी ओर जाती हैं। इसलिए सबसे पहले इस दुर्जय मनको वैराग्यरूपी खड्गसे मार डालना चाहिए। क्योंकि जिस बुद्धिमान्ने अपने मनको रोक लिया, उसकी इन्द्रियाँ फिर कुछ कुकर्म नहीं कर पातीं और उनके लिए कोई आश्रय न रहनेसे वे स्वयं नष्ट हो जाती हैं।

इसके अतिरिक्त धर्मात्मा पुरुषोंको मोक्ष प्राप्तिके लिए व्रत, समिति आदि ग्रहण कर बड़ी सावधानीके साथ छह कायके जीवोंकी रक्षा करनी चाहिए। ये सब यत्न कर्मोंके नाश करनेके लिए बतलाये गये हैं। जिनभगवान्ने जिस महान् धर्मका उपदेश किया है, उसका मूल है—' अहिंसा '। यह धर्म संसारका भ्रमण मिटाकर जीवको मोक्षका सुख प्राप्त कराता है। इस धर्ममें संयम ग्रहण द्वारा बारह अव्रतका त्याग करना कहा गया है। क्योंकि ये अव्रत पाप बंधके कारण हैं।

चार विकथा और पन्द्रह प्रमाद ये भी पाप-बंधके कारण हैं। आत्म-कल्याणकी कामना करनेवालोंको ध्यान, अध्ययन आदि द्वारा इनके नष्ट करनेका प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि प्रमादी पुरुषोंके कर्मोंका आस्रव सदा ही आता रहता है। उनके दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि नष्ट होकर संसार बढ़ने लग जाता है।

मोक्षका सुख चाहनेवालोंको कषायों पर विजय करना चाहिए। क्योंकि ये कर्मोंकी स्थितिको बढ़ाती हैं। और इन कषायोंके आवेशमें जब क्रोध आता है तब उस क्रोधी मनुष्यका तप-जप, ध्यान-ज्ञान, आचार-विचार, क्रिया-चारित्र आदि सभी नष्ट होकर दुःख, विपत्ति, संसार-स्थिति आदि खूब बढ़ जाते हैं। यह जानकर बुद्धिमानोंको उत्तम-क्षमा आदि दस धर्मरूपी धनुष-बाण द्वारा इन दुष्ट कषायरूपी शत्रुओंको नष्ट कर देना चाहिए। तभी वे सुख प्राप्त करनेके अधिकारी बन सकेंगे।

मन-वचन-कायके कर्म—व्यापारको योग कहते हैं। इसके पन्द्रह भेद हैं। ये योग शुभ—पुण्यबन्ध और अशुभ—पापबंधके कारण हैं। इन तीनों ही प्रकारके योगोंको रोकना चाहिए। सत्यमनोयोग और अनुभयमनोयोग, सत्यवचनयोग और अनुभय-वचनयोग ये चार योग शुभबंधके कारण हैं और असत्यमनोयोग तथा उभयमनोयोग, और असत्यवचनयोग तथा उभयवचनयोग ये चार योग पापबंधके कारण हैं। अशुभ मनोयोगवालेके सदा कर्मोंका आस्रव आता रहता है। इसलिए बुद्धिमानोंको शुभ ध्यान द्वारा इस अशुभ योगके छोड़नेका यत्न करना चाहिए। और अशुभ

वचनयोगको, जो अत्यन्त निंद्य और पापका कारण है, सत्यव्रत और मौनव्रत द्वारा रोकना चाहिए। यद्यपि उपदेश शुभ और अशुभ इन दोनों ही योगोंके छोड़नेका है; परन्तु धर्मोपदेश, ध्यान-सिद्धि आदिके लिए कभी कभी शुभ योग भी धारण किया जाता है। वह पुण्यके बढ़ानेका कारण है। रहा सात प्रकारका काययोग, सो वह पाप और अनर्थोंका कारण—अशुभ है, इसलिए साधुओंको कायोत्सर्ग, ध्यान-अध्ययनादि द्वारा उसे नष्ट करना चाहिए। यहाँ जिन जिन संसारके बढ़ानेवाले कारणोंका उल्लेख किया गया, वे सब अनन्त दुःखोंके कारण हैं। उन्हें काले भयंकर सर्पकी तरह दूरहीसे छोड़देना चाहिए। तब ही कर्मोंका आना रुक सकेगा और मोक्ष सुखका लाभ प्राप्त किया जा सकेगा। इन मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय, योग आदिके रुकते ही कर्मोंका आना रुक जायगा और कर्मोंके रोकनेके लिए वैराग्यरूपी शस्त्रसे राग, द्वेष, मोह आदि शत्रुओंको नष्ट कर मुनिपद स्वीकार करना चाहिए।

इस प्रकारके विचारोंसे सुदर्शनका वैराग्य बहुत ही बढ़ गया। वह फिर स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धु, धन-दौलत, सुख-वैभव, तथा दस प्रकार बाह्य परिग्रह और मिथ्यात्व, राग, द्वेष आदि चौदह अन्तरंग परिग्रह—आत्म-शत्रु, इन सबको छोड़कर निःशल्य—चिन्ता-रहित हो गया।

इसके बाद वह श्रीविमलवाहन मुनिराजके पास आया और उन्हें अपना दीक्षा-गुरु बना उसने नमस्कार किया। फिर उनके कहे अनुसार शुद्ध मनसे यह संकल्प कर, कि—' सारे संसारके

जीवोंपर मेरा समान भाव है,' और अट्ठाईस मूलगुणोंकी, जो केवल-ज्ञान आदि गुणोंके प्राप्त करानेवाले हैं, भावना भाते हुए उस धर्मात्माने मन-वचन-कायकी शुद्धिपूर्वक सब सुखों और मुक्तिकी माता दिव्य जिन-दीक्षा ग्रहण कर ली।

सुदर्शनका यह साहस देखकर राजाको बड़ा वैराग्य हुआ। वह भी तब संसार-शरीर-भोगोंसे विरक्त होगया। उसने अपने पुत्रको राज्यका सब भार सौंपकर और सुदर्शनके पुत्र सुकान्तको राजसेठ बनाकर बाह्याभ्यन्तर परिग्रहको छोड़कर सुदर्शनके साथ ही विमलवाहन मुनिराजसे जिन-दीक्षा लेली, जो संसारका भ्रमण मिटाकर कर्मोंका नाश करती है—मोक्षका सुख देती है।

अपने स्वामीको योगी होते देख सब राज-रानियाँ भी एक साड़ीके सिवा सब परिग्रहको छोड़कर दीक्षा ले आर्यिका होगईं। अब वे जप-तप, ध्यानाध्ययन करती हुई आर्यिकाओंके साथ रहने लगीं। अपने स्वीकार किये संयमको पालती हुई और धर्म साधन करती हुई उन्होंने वहीं पारणा किया।

यहाँसे वे सब मुनि विहार कर अनेक देशों और शहरोंमें धर्मोपदेशार्थ घूमे-फिरे। अपने व्रतोंको उन्होंने प्रमाद रहित होकर पालन किया। सुदर्शन बड़ा बुद्धिमान् और जितेन्द्री था, सो उसने अभ्यासरूपी खेवटिये द्वारा खेये गये और अप्रमादरूप वायु वेगसे बहनेवाले श्रीगुरुके मुखरूपी जहाजपर चढ़कर थोड़े ही दिनोंमें द्वादशांगरूपी महान् समुद्रको, जो कि अनमोल रत्नोंसे भरा हुआ है, पार कर लिया।

सुदर्शनने तपस्या द्वारा अपनी आत्मशक्तिको खूब बढ़ा लिया। वह बड़ा ही धीर और तेजस्वी होगया। दुःसह परिषहोंको सहने लगा। नाना देशों और नाना गाँवोंमें घूमने-फिरनेमें अनेक बाधायें उसे आगईं। ऐसा कोई गुण न बचा जो उसमें न हो। वह वज्रवृषभनाराचसंहननका धारक था। उसे इस प्रकार सहनशील और तेजस्वी देखकर उसके गुरुने अकेले रहनेकी आज्ञा दे दी। गुरु महाराजकी आज्ञा पाकर वह अपने मूल और उत्तर गुणोंका मन-वचन-कायकी शुद्धिपूर्वक पालन करता हुआ अकेला ही नाना देशोंमें पर्यटन करने लगा। उसने अब कर्मोंके नाश करनेकी खूब तैयारी की। अपनी शक्तिको प्रगट कर वह बारह प्रकार तप करने लगा।

१—अनशन-तपके लिए वह पन्द्रह-पन्द्रह दिन, एक-एक, दो-दो तथा चार-चार, छह-छह महीनाके उपवास करता था। इसलिए कि उनसे उत्पन्न हुई तपरूपी अग्नि कर्मरूपी वनको भस्मकर मोक्षका सुख दे।

२—अवमौदर्य-तपके लिए वह पारणाके दिन भी थोड़ासा खाकर रह जाता और फिर दिनों दिन आधा आधा आहार घटाता जाता था। जिससे कि प्रमाद—आलस न बढ़ पावे।

३—वृत्तपरिसंख्यान-तपके लिए वह बड़ी बड़ी कड़ी प्रतिज्ञायें करता। कभी वह प्रतिज्ञा करता कि आज मुझे चौराहेपर आहार मिलेगा तो करूँगा, अथवा एक ही घरतक आहारके लिए जाऊँगा। कभी इससे और कोई विलक्षण ही प्रतिज्ञा करता। उसी दशामें यदि आहार मिल गया तो कर लेना, नहीं तो वापिस तपोवनमें लौट आता।

४—रसपरित्याग-तपके लिए वह कभी केवल एक ही अन्न खाकर रह जाता, कभी कोई रस छोड़ देता और कभी कोई। जिससे विकार न बढ़े—इन्द्रियोंकी विषय-लालसा नष्ट हो, ऐसा आहार वह सदा करता था।

५—विविक्तशय्यासन-तपके लिए वह कभी सूने घरोंमें, कभी गुफाओंमें, कभी वनोंमें, कभी मसानोंमें और कभी पर्वतोंमें रहता, जहाँ कोई न होता—जो निर्जन—एकान्त स्थान होते। और कभी ऐसे भयंकर स्थानोंमें, जहाँ सिंह, व्याघ्र, रींछ, चीते, गेंड़े आदि हिंसक जीव रहते, सिंहकी तरह निर्भय—निडर होकर रहता। उसका लक्ष्य था 'ध्यानसिद्धि' और उसीके लिए वह सब कुछ करता और सहता था।

६—कायक्लेश तपके लिए वह वर्षा समय वृक्षोंके नीचे ध्यान करता। ऊपर मूसलधार पानी बरस रहा है, बड़ी प्रचंड हवा बह रही है और वृक्ष विषैले साँप, बिच्छू आदि जीवोंसे युक्त हो रहे हैं। ऐसी भयंकर जगहमें जहाँ अच्छासे अच्छा हिम्मत-बहादुर भी एक क्षण नहीं रह सकता, वहाँ वह महीनों एकासनसे गुजार देता।

शीतके दिनोंमें जब कड़कड़ाट ठंड पड़ती, वृक्ष झुलस जाते, शरीर थरथर काँपने लगता, उस समय वह शरीरसे सब माया-ममता छोड़कर नंगे-शरीर काठकी भाँति खड़ा होकर ध्यान करता। सो वह भी खुले मैदानमें या नदी अथवा तालाब आदिके किनारोंपर।

गर्मीके दिनोंमें जब खूब गरमी पड़ती, पर्वतोंके ऊँचे शिखर उस

गरमीके मारे तपकर आगसे लाल हो जाते, सारे शरीरसे पसीना निकलने लगता, उसपर हवासे उड़ी धूल आ-आकर चारों ओरसे गिरती, प्यासके मारे गला सूखने लगता, और हृदय छट-पटाने लगता— जहाँपर एक मिनटके लिए ठहरनेकी किसीकी हिम्मत न पड़ती, वहाँ सुदर्शनसा धीरवीर महात्मा महीनों विता देता और कष्टोंकी कुछ परवा न करता—बड़ी शान्तिके साथ उन्हें सहता। यह कायक्लेश-तप बड़ा ही दुःसह है, पर सुदर्शनमुनिका ध्येय था अनन्त सुख—मोक्षकी प्राप्ति और पापोंका नाश। इसलिए वह इन सबको बड़ी धीरताके साथ सह लेता था। यह हुआ छह प्रकारका बाह्य तप और इसी तरह छह ही प्रकारका अभ्यन्तर तप है। अभ्यन्तर तप जिस लिए किया जाता है वह कारण योगियोंको प्रत्यक्ष है। यह तप बड़ा दुःसह है, जिनका हृदय डरपोक है, वे इसे धारण नहीं कर सकते। यह कर्मरूपी वनको जलानेके लिए दावानलके समान है। योगी लोग कर्म-शत्रुओंकी शान्तिके लिए इसे धारण करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

साधु लोग यद्यपि बड़ी सावधानी रखते हैं कि उनसे कोई प्रकार प्रमाद न बन जाय। तथापि यदि दैवी-घटनासे उनके व्रतोंमें कोई दोष लग जाय, तो उनकी शुद्धिके लिए वे प्रायश्चित्त लेते हैं। प्रायश्चित्तसे उनके सब व्रत-आचारण निर्दोष होकर परम शुद्ध हो जाते हैं। यह पहला प्रायश्चित-तप है।

दूसरा विनय-तप है। उसके लिए वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप और इनके धारण करनेवाले

पवित्र तपस्वियोंका मन-वचन-कायकी शुद्धिपूर्वक विनय करता । इस विनय-गुणके प्रभावसे उसे सब विद्यायें सिद्ध होगई थीं, जो संसारके पदार्थोंका ज्ञान करानेके लिए दीयेकी भाँति हैं ।

तीसरा वैयावृत्य-तप है । इसके लिए वह अपनेसे जो तप, ध्यान, योग और गुणोंमें अधिक थे, उनकी बड़े हर्षके साथ जितनी अपनेमें शक्ति होती उसके अनुसार वैयावृत्य करता । जिससे कि उसे भी उनके समान शक्तियाँ प्राप्त हों । इस तपके प्रभावसे उसे बड़ी शक्ति प्राप्त होगई थी । उससे वह कठिनसे कठिन तप करनेमें कभी पीछा पग न देता । उसका रत्नत्रय जो सब सिद्धियोंका देनेवाला है, बड़ा निर्दोष—निर्मल होगया था ।

चौथा स्वाध्याय-तप है । इसके लिए वह अप्रमादी, जितेन्द्री सुदर्शन सदा स्वाध्यायमें लीन रहता था । स्वाध्यायके पाँच भेद हैं, सो वह कभी स्वयं शास्त्रोंका अध्ययन करता, कभी अपनेसे अधिक ज्ञानियोंसे अपनी शंकाओंका समाधान करता, कभी तत्त्वज्ञानका बार बार मनन या चिंतन करता—उसपर विचार करता, कभी पाठको शुद्धताके साथ घोखता और कभी मिथ्या मार्गको दूर करने और सत्यार्थ मार्गको प्रगट करनेके लिए धर्मका पवित्र उपदेश करता । यह पाँचों प्रकारका स्वाध्याय अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाला है । इसे निरंतर करते रहनेसे साधुओंका चित्त स्वप्नमें भी अपने ध्यानसे नहीं डिगता और वैराग्यमें बड़ा ही स्थिर हो जाता है ।

पाँचवाँ व्युत्सर्ग—कायोत्सर्ग-तप है । इसके लिए वह काठकी

भाँति निश्चल होकर एकान्त स्थानमें नाना प्रकार कायोत्सर्ग करता। पन्द्रह पन्द्रह दिन, महीना महीना वह ध्यानमें खड़ा ही रहता। इस तपके प्रभावसे वह संसार-विषय-भोग-सम्बन्धी सुखोंमें बड़ा ही निर्मोही होगया था। यह तप कर्मोंका जड़मूलसे नाश करनेवाला है।

छठा ध्यान नामा तप है। ध्यानके चार भेद हैं। आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, और शुक्लध्यान। इसमें आर्त्तध्यानके भी चार भेद हैं। पहला अनिष्ट-संयोग नाम आर्त्तध्यान, अर्थात् जिस वस्तुको मन नहीं चाहता उसके नष्ट होनेका बार बार चिंतन करते रहना—वह कब नष्ट होगी। दूसरा इष्ट-वियोग नाम आर्त्तध्यान, अर्थात् जिसे मन चाहता है उसकी प्राप्तिके लिए चिंतन करते रहना। तीसरा रोगसे होनेवाला आर्त्तध्यान है। रोग-जनित कष्टका चिन्तन करना, अधीर होना, रोना-धोना आदि। चौथा निदान नाम आर्त्त-ध्यान है। निदान अर्थात् आगामी विषय-भोगादिककी इच्छा-करना, उसका विचार करना। यह अर्तध्यान बड़ा ही बुरा और पुण्य-कर्मका नाश करनेवाला है। सुदर्शनने इसे शुभ ध्यान द्वारा जड़मूलसे नष्ट कर दिया था। इसलिए उसके निर्मल हृदयको इस आर्त्तध्यानने स्वप्नमें भी न छू-पाया। इसी प्रकार रौद्रध्यानके भी चार भेद हैं। पहला हिंसानन्द-रौद्रध्यान अर्थात् हिंसामें आनन्द मानना। दूसरा मृषानंद-रौद्र-ध्यान, अर्थात् झूठ बोलनेमें आनन्द मानना। तीसरा स्तेयानन्द-आर्त्तध्यान, अर्थात् चोरी करनेमें आनन्द मानना। चौथा परिग्रहानन्द-आर्त्तध्यान, अर्थात भोगोपभोगकी वस्तुओंकी रक्षाका चिन्तन करना और उसमें आनंद मानना। इस ध्यानमें सिवा कष्टके सुखका नाम नहीं।

यह बड़ा बुरा ध्यान है। पर सुदर्शनने अपने निर्मल आत्मापर इसका तनिक भी असर न होने दिया। सो ठीक ही है— सामान्य योगियोंके महाव्रतमें भी जब यह कुछ हानि नहीं कर सकता तब सुदर्शनसे महायोगीके अत्यन्त शुद्ध आत्मापर यह कैसे अपना प्रभाव डाल सकता है! ये आर्त्तध्यान और रौद्र ध्यान बुरे हैं, इसलिए छोड़ने योग्य हैं। और धर्मध्यान तथा शुक्ल-ध्यान आत्म-कल्याणके परम साधन हैं, इसलिए ग्रहण करने योग्य हैं। उक्त दोनों ध्यानोंकी भाँति इनके भी चार चार भेद हैं। धर्मध्यानके चार भेदोंमें पहला आज्ञाविचय-धर्मध्यान, अर्थात् सर्वज्ञ भगवान्‌ने जो सत्यार्थ प्रतिपादन किया और कम बुद्धि होनेके कारण यदि वह समझमें न आवे तो उसपर वैसा ही विश्वास कर वार वार विचार करना। दूसरा अपायविचय-धर्मध्यान, अर्थात् करुणार्द्र अन्तःकरणसे, हा! मिथ्यामार्गपर चलते हुए ये संसारी जीव कब सुमार्गपर चलने लगेंगे, इस प्रकार मिथ्यामार्गके अपाय-नाशका वार वार चिंतन करना। तीसरा विपाकविचय-धर्मध्यान, अर्थात् ज्ञानावरणादि कर्मोंके फलपर वार वार विचार करना। चौथा संस्थानविचय-धर्मध्यान, अर्थात् लोकके संस्थानका—आकार-प्रकारका चिंतन करना। यह धर्मध्यान उत्कृष्ट ध्यान है, सुखका देनेवाला है, धर्मका समुद्र है और सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त ले जानेवाला है। महायोगी सुदर्शन अपने योगोंको रोक कर इस ध्यानको करता था।

इसके बाद उसने अपने मनको निर्विकल्प और परम वैरागी बनाकर अप्रमत्तगुणस्थानमें शुक्लध्यानके पहले पाये पृथक्त्ववितर्क-

वीचारका ध्यान करना आरंभ किया। यह ध्यान आत्मतत्त्वको प्रकाशित करनेके लिए रत्नमयी दीपकके समान है और कर्मरूपी वनके जलानेको आगके समान है। शुक्लध्यानके शेष रहे तीन पायोंको आगे पूर्ण कर सुदर्शन मोक्षके कारण केवलज्ञानको प्राप्त करेगा। इस ध्यानके द्वारा हृदयमें बड़ा ही अपूर्व आनन्द उत्पन्न होता है और पापकर्मोंका क्षणमात्रमें नाश होता है।

यह जिनभगवान्‌के द्वारा कहा गया और आन्तरिक क्रोध, मान, माया, राग, द्वेष, आदि शत्रुओंकी शक्तिको नाश करनेवाला छह प्रकारका परम अभ्यन्तर तप है। महातपस्वी सुदर्शन इसे कर्म-शत्रुओंके नाशार्थ प्रतिदिन धारण करता। इससे उसका अन्तरंग बड़ा ही पवित्र होगया था। मंत्रकी शक्तिसे जैसे सर्प सामर्थ्य-हीन हो जाते हैं– काट नहीं सकते और काटे भी तो उनका जहर नहीं चढ़ता, उसी तरह इस तप द्वारा सुदर्शनके कर्म बड़े ही अशक्त होगये थे–अपना कार्य वे कुछ न कर पाते थे। उस तपके प्रभावसे सुदर्शनकी आत्म-शक्ति खूब बढ़ गई, उसे कई ऋद्धियाँ प्राप्त हो गईं, जो कि मोक्ष-मार्गकी सहायक थीं। सुदर्शन संसारके प्राणी मात्रमें मित्रताकी भावना भाता, अपनेसे अधिक गुणधारी मुनि-योंमें आनन्द मनाता, रोगादिके कष्टसे दुःख पा रहे जीवोंपर करुणा करता और अपनेसे वैर करनेवाले पापी लोगोंमें समभाव रखता। इन पवित्र भावनाओंको वह सदा भाता रहता था। इसलिए उसके हृदयमें राग-द्वेषादि दोषोंने स्वप्नमें भी स्थान न पाया। किन्तु उसके निर्मल हृदयमें रत्नमयी दीपकके समान एक प्रकाशमान

पवित्र ध्यान-ज्योति, जो मोक्ष-मार्गमें पहुँचानेवाली है, सदा जला करती थी।

इस प्रकार चारित्र और व्रतोंको जिसने धारण किया, धर्म और शुक्लध्यानमें अपने आत्माको स्थिरतासे लगाया, इन्द्रियों और कामदेवको पराजित किया, सब दोषोंको नष्ट किया, संसारकी चरम सीमा प्राप्त की और जो गुणोंका समुद्र कहलाया वह सुदर्शन मोक्ष-मार्गमें जय-लाभ करे। उसे मैं नमस्कार करता हूँ, वह मेरी आत्म-शक्तियोंको बढ़ावे।

व्रतोंके धारण करनेसे सब गुण प्राप्त होते हैं और आत्महित होता है। बुद्धिमान् लोग व्रतोंका आश्रय इसीलिए प्राप्त करते हैं कि इनसे शिव-वधूका सुख प्राप्त होता है। ऐसे व्रतोंके लिए मैं भक्तिसे नमस्कार करता हूँ। मेरी यह श्रद्धा है कि व्रतोंको छोड़कर सुख-सम्पत्तिका देनेवाला और कोई नहीं है। इन व्रतोंका मूल है क्रिया—चारित्र। ऐसे व्रतोंमें मैं अपने चित्तको लगाता हूँ और व्रतोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे मेरी सदा रक्षा करें।

सुदर्शन और विमलवाहन मुनिराज मुझे अपने अपने गुण प्रदान करें, मोक्ष-लक्ष्मीको प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं, जो ध्यानके द्वारा सब पापरूपी विषको नष्ट कर ज्ञानरूपी समुद्रके पार पहुँच चुके हैं, जो शीलव्रत आदि उत्तम उत्तम गुणोंसे युक्त हैं और धर्मात्मा जन जिनकी सदा पूजा-प्रशंसा करते हैं। उन परम वीतरागी मुनिराजोंको मेरा नमस्कार है।

सातवाँ परिच्छेद।

संकटपर विजय।

सुदर्शनको आदि लेकर जितने धीरवीर अन्तःकृत केवली हुए—कष्ट सहते सहते मृत्युके अन्तिम समयमें जिन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष लाभ किया उन मुनिराजोंको मैं नमस्कार करता हूँ। वे मुझे भी अपने जैसी शक्ति प्रदान करें।

सुदर्शन अनेक देशों और शहरोंमें विहार करता और रास्तेमें पड़नेवाले तीर्थोंकी यात्रा करता चला जाता था। धर्ममें उसकी बुद्धि बड़ी दृढ़ होगई थी। वह चलते समय जमीनको देखकर बड़ी सावधानीसे चलता—ऐसे उद्धतपनेसे वह कभी पाँव नहीं धरता, जिससे जीवोंको कष्ट पहुँचे। उसे कभी तो आहार मिल जाता और कभी न भी मिलता। मिलनेपर न वह खुशी मनाता और न मिलनेपर दुखी होता। उसके भावोंमें यह महान् समभावना उत्पन्न होगई थी। वह सदा मन-वचन-कायसे वैराग्य-भावनाका विचार करता रहता। परमार्थ-साधनमें उसकी बड़ी तत्परता थी। वह बड़ा ही वीतरागी और निस्पृह महात्मा था। यह सब कुछ होनेपर भी उसकी एक महान् उच्चाकांक्षा थी। वह यह कि—मोक्षके लिए वह बड़ा उत्कण्ठित था।

सुदर्शन धीरे धीरे पाटलिपुत्र (पटना) में पहुँचा। वहाँ श्रावकोंके बहुत घर थे। एक दिन वह आहारके लिए निकला।

रास्तेमें जाता हुआ वह इस बातका विचार करता जाता था कि कौन घर उत्तम लोगोंका है और कौन नीच लोगोंका। कारण साधु लोग उत्तम पुरुषोंके यहीं आहार लेते हैं। सुदर्शन जो आहार करता वह इसलिए नहीं कि उसका शरीर पुष्ट हो, किन्तु इसलिए कि धर्म-साधनाके लिए शरीरका टिका रखना वह आवश्यक ज्ञान करता था।

अपनी दिव्य सुन्दरतासे कामदेवको लजानेवाले उस महान् वीर युवा महात्मा सुदर्शनको जाते हुए उस अभयमती रानीकी दासीने, जिसका कि ऊपर जिकर आ चुका है, देखा। उसने तब अपनी मालकिन देवदत्ता वेश्यासे कहा—देखो, जिस सुदर्शन मुनिकी बाबत मैंने तुमसे जिकर किया था, वह यह जा रहा है। अब यदि तुम कुछ कर सकती हो, तो करो। इतनी याद दिलाते ही देवदत्ताको अपनी प्रतिज्ञाकी भी याद हो उठी। उसने तब अपनी एक दासीको बुलाया और उसे नकली श्राविका बनाकर सुदर्शन मुनिको लिवा ले-आनेको भेजा। उस दुष्टिनीने जाकर उसको नमस्कार किया और आहारके लिए प्रार्थना की। सुदर्शन खड़ा होगया। वह सीधा-सादा और शुद्ध-हृदयी था; सो उसने उस दुष्टिनीकी ठग-विद्याको न जान पाया। दासी मुनिको देवदत्ताके घरमें ले आई। यहाँसे वह सुदर्शनको एक दूसरे कमरेमें लिवा लेगई और नमस्कार कर उस दुराचारिणीने मुनिको एक पट्टेपर बैठा दिया।

इतनेमें देवदत्ता भी वहाँ आकर पास ही रक्खे हुए पट्टेपर बैठ गई। मुनिके साथ नाना भाँति कुचेष्टा कर वह बोली—प्यारे,

तुम बड़े ही सुन्दर हो, तुम्हारी इस दिव्य सुन्दरताको देखकर बेचारा कामदेव भी शर्मिन्दा होता है। तुम्हारे सौभाग्य, तेजस्विता आदिको देखकर मनमें एक अपूर्व आनन्दका सोता बहने लगता है। तुम गुणोंके समुद्र हो। प्यारे, भाग्यने तुम्हें सब कुछ दिया है। तुम्हारी भर जवानीकी छटायें छूटकर जिधर उड़ती हैं उधर ही वह सबको अपनी ओर खींचने लगती हैं। तब मैं जो तुम्हें इतना प्यार करती हूँ, इसपर तुमको आश्चर्य न करना चाहिए। तुम इतने बुद्धिमान् होकर भी न जाने क्यों ऐसी झंझटमें पड़े हो और इतना कष्ट सह रहे हो। बतलाइए, तो इस दुर्धर तपको करके और ऐसा शारीरिक कष्ट उठाकर तुम क्या लाभ उठाओगे? और फिर तुमको करना ही क्या है, जिसके लिए ऐसा कष्ट उठाया जाय। तुम तो इन सब कष्टोंको छोड़कर आनन्दसे यहीं रहो। मैंने तुम्हारी कृपासे बहुत धन कमाया है। मेरे पास सोने-जवाहरातके बने अच्छे अच्छे गहने-दागीने हैं। भोगोपभोगकी एकसे एक बढ़िया चीज़ है। अच्छे कीमती और सुन्दर रेशमी वस्त्र हैं। मैं अधिक तुमसे क्या कहूँ, मेरे यहाँ जिन वस्तुओंका संग्रह है वह संग्रह एक राजाके महलमें भी न होगा। इसके सिवा सर्वोपरि जैसे तुम सुन्दर वैसी ही मैं सुन्दरी। भगवानने—विधिने आपकी मेरी बड़ी अलबेली जोड़ी मिलाई है। यही देखकर मेरा मन तुमपर अनुरक्त हुआ है। तब प्यारे, प्रार्थनाको मान देकर तुम यहीं रहना कबूल करो। तुम हम खूब आनन्द-भोग करेंगे और इस जिन्दगीका मजा लूटेंगे। क्योंकि इस असार संसारमें एक स्त्री-रत्न ही सार है। इसके

द्वारा सब इन्द्रियाँ परितृप्त होती हैं। चतुर पुरुषोंको इसके साथ सुखोपभोग करनाही चाहिए। ब्रह्माजीने संसारमें जितनी भोगोपभोगकी वस्तुयें निर्माण कीं हैं वे सब स्त्री और पुरुषोंके आनन्द-उपभोगके लिए हैं। इसलिए इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिए इन भोगोपभोगोंको, जो जीवनको सफल करनेवाले हैं, भोगने ही चाहिए। और जो स्वर्ग-सुखका कारण यह तप है वह तो बुढ़ापेमें वानप्रस्थाश्रममें घर-बार छोड़कर धारण किया जाता है। जो समझदार लोग हैं वे तो इसी प्रकार जैसी जैसी उनकी अवस्था होती है उसी प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थोंका सेवन करते हैं। आपको भी वैसा ही करना चाहिए। देवदत्ताकी ये सब बातें सुन-सुनाकर सुदर्शन मुनिने उससे कहा—ओ बे-समझ मूर्खिणी, तूने यह जो कुछ कहा वह निंद्य है—बुरा है। तू स्त्रीको रत्न कहकर यह बतलाना चाहती है कि संसारकी सब वस्तुओंमें स्त्री श्रेष्ठ है, पर तेरा यह कहना सत्य नहीं—झूठा है। क्योंकि स्त्री कैसी ही सुन्दर क्यों न हो, पर जब उसके सम्बन्धमें विचार करते हैं तब यह स्पष्ट जान पड़ता है कि उसके मुखमें श्लेष्म—कफ, चर्म, हड्डी आदिको छोड़कर ऐसी कोई सुन्दर वस्तु नहीं जिसे अच्छे लोग प्यार कर सकें। स्त्रियोंका उदर, जिसे बड़ी बड़ी उपमायें दी जाती हैं, मल, मूत्र, मांस, लोहू, मज्जा, हड्डी आदि दुर्गन्धित और निंद्य वस्तुओंसे भरा हुआ है—उसमें ऐसी कोई मनको हरनेवाली चीज नहीं दिखाई पड़ती। स्त्रियोंके स्तनोंमें मांस और खूनके सिवा कोई पवित्र वस्तु नहीं। उनका योनिस्थान,

जिससे कि सदा मल-मूत्रादि घृणित वस्तुयें बहती रहती हैं, निंद्य है, अपवित्रताकी साक्षात् खान है। तूने जिन भोगोपभोग वस्तुओंको कामियोंके लिए अच्छा बतलाया, बतला तो उनमें सार क्या है? और कौन उनमें ऐसी खूबी है जो वे तृप्तिकी कारण कही जायँ? उनका मुँह, जिसे कामी लोग चाहते हैं—चूमते हैं, लारादिसे युक्त है और सदा बदबू मारा करता है। उसका चूमना ऐसा है जैसा कुत्तेका मुर्दे और दुर्गन्धित शरीरको चाटना। जो विषय-लम्पटी लोग इस शरीर द्वारा भोगोंको भोगते हैं और उसमें आनन्द मानते हैं, यदि विचार कर देखा जाय तो यह शरीर सब अपवित्रताओंका घर है। जिसके नौ द्वारोंसे सदा मल-मूत्रादि दुर्गन्धित वस्तुयें बहती रहती हैं उस शरीरको भला ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो खिला-पिला कर पाले और वस्त्राभूषणों द्वारा सजावे। शरीर आत्माका शत्रु है और शत्रुको कितना ही पाला-पोसा जाय, पर अन्तमें होगा वह दुःखका कारण ही। यही हालत इस शरीरकी है। इसे कितना ही खिला-पिलाकर पुष्ट करो—कष्ट न देकर आराम दो, पर यह अपने स्वभावको न छोड़कर नाना भाँति रोगोंको उत्पन्न करेगा और कष्ट देगा तथा परलोकमें दुर्गतिमें पहुँचावेगा। इसलिए जो समझदार हैं—परलोक सुधारना चाहते हैं वे इस शरीरको तप द्वारा सुखाकर अपने मनुष्य जन्मको सार्थक करते हैं। जिन अनेक प्रकारके भोगोंको भोग कर भी कामी लोग जब तृप्त नहीं हुए तब उन नरकोंमें लेजानेवाले भोगोंसे सत्पुरुषको क्या लाभ? लोग तो यह समझते हैं कि विषय-

भोगोंसे तृप्ति होती है, पर वे नहीं जानते कि कामातुर लोग ज्यों ज्यों इन भोगोंको भोगते हैं त्यों त्यों उनकी इच्छा अधिक अधिक बढ़ती ही जाती है—उनसे रंचमात्र भी तृप्ति नहीं होती। यह काम-रूपी अग्नि असाध्य है—इसका बुझा देना सहज नहीं। यह सारे शरीरको खाकमें मिलाकर ही छोड़ती है। यह सब अनर्थोंका कारण है। जैसे जैसे इसका सहवास बढ़ता है, यह भी फिर उसी तरह अधिकाधिक बढ़ती जाती है। ये भोग जहरीले सर्पोंसे भी सैकडों गुणा अधिक कष्ट देनेवाले हैं। क्योंकि सर्प तो एक जन्ममें एक ही वार प्राणोंको हरते हैं और ये भोग नरक, तिर्यंच आदि कुगतियोंमें अनन्त वार प्राणोंको हरते हैं। इन्हें तू नरकोंमें लेजानेवाले और दोनों जन्मोंको विगाड़नेवाले महान् शत्रु समझ। उन रोगोंका सह लेना कहीं अच्छा है जो थोड़े दुःखोंके देनेवाले हैं, पर इन भोगोंका भोगना अच्छा नहीं जो जन्म जन्ममें अनन्त दुःखोंके देनेवाले हैं। कारण, रोगोंको शान्तिपूर्वक सहलेनेसे तो पुराने पाप नष्ट होते हैं और भोगोंको भोगनेसे उल्टे नये पाप-कर्म बन्ध होते हैं और फिर उनसे दुर्गतिमें दुःख उठाना पड़ता है। जो मूर्ख जन भोगोंको भोगकर अपने लिए सुखकी आशा करते हैं, समझना चाहिए कि वे कालकूट विषको खाकर चिर कालतक जीना चाहते हैं। पर यह उनकी बुद्धिका भ्रम है। जो कामसे पीड़े गये लोग यह समझते हैं कि विषय-भोगोंसे हमें सुख प्राप्त होगा, समझो कि वे शीतलताके लिए जलती हुई आगमें घुसते हैं। जिस प्रकार गौके सींग दुहनेसे कभी दूध नहीं निकलता और सर्पमें अमृत नहीं

होता उसी प्रकार विषय-भोगों द्वारा कभी सुखका लेश भी नहीं मिलता। यह समझकर जो विद्वान् हैं—विचारवान् हैं उन्हें उचित है कि वे इन आत्माके महान् शत्रु विषय-भोगोंको अच्छे तेज वैराग्य-रूपी खड्गसे मारकर सुखके कारण तपको स्वीकार करें। और देवदत्ता, तूने जो यह कहा कि तप बुढ़ापेमें करना चाहिए, सो भी ठीक नहीं। तेरा यह कहना मिथ्या है और अपने तथा दूसरोंके दुःखका कारण है। क्योंकि कितने तो वेचारे ऐसे अभागे हैं कि वे गर्भहीमें मर जाते हैं और कितने पैदा होते होते मर जाते हैं। कितने बालपनमें मर जाते हैं और कितने कुमार अवस्थामें मर जाते हैं। कितने जवान होकर मर जाते और कितने कुछ ढलती उमरमें ही मर जाते हैं। अग्नि सूखे काठके ढेरके ढेर जैसे जलाकर खाक कर देती है उसी तरह यह दुर्बुद्धि काल बालक, युवा, वृद्ध आदिका खयाल न कर सबको मौतके मुंखमें डाल देता है। यह पापी काल प्रतिदिन न जाने कितने बालक, जवान और बूढोंको अपने सदा जारी रहने-वाले आगमनसे मारकर मिट्टीमें मिला देता है। इसलिए कालका तो कोई निश्चय नहीं कि वह किसीको तो मारे और किसीको न मारे; किन्तु उसके लिए तो आजका पैदा हुआ बच्चा और सौ बरसका बूढ़ा भी समान है। तब जो कालसे डरते हैं उन बुद्धिमानोंको चाहिए कि वे तपरूपी धनुष चढ़ाकर रत्नत्रयमयी बाणों द्वारा कालरूपी शत्रुको पहले ही नष्ट करदें। कुछ लोग यह विचारा करते हैं कि आत्महितके लिए तप धारण तो करना चाहिए, पर वह जवानीमें नहीं, किन्तु बुढ़ापेमें; ऐसे लोग बड़े मूर्ख हैं।

कारण, वे तो विचारते ही रहते हैं और काल क्षणभरमें उन्हें उठा ले उड़ता है। यह आयु, जिसे हम भ्रमसे स्थिर समझ रहे हैं, हाथकी उँगलियोंके छिद्रोंसे गिरते हुए पानीकी तरह क्षण क्षणमें नष्ट हो रही है, इन्द्रियाँ शिथिल पड़ती जा रही हैं और जवानी विलीन होती जाती है। इसलिए जबतक कि शरीर स्वस्थ है—नीरोग है, इन्द्रियोंकी शक्ति नहीं घटी है, बुद्धि बराबर काम दे रही है और संयम, व्रत, उपवासादिमें बराबर प्रयत्न है तबतक इस मोहरूपी योद्धाको और साथ ही काम तथा विषयोंको नष्टकर स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्तिके लिए जितना शीघ्र बन सके तप ग्रहण करलेना उचित है। यही सब जानकर और यह समझकर, कि मौत सिरपर सवार है, अपने आत्म-कल्याणके लिए योगी लोग तप और योगाभ्यास द्वारा इन्द्रियोंके विषयोंको नष्टकर आत्महितका मार्ग धर्म-साधन करते हैं।

सुदर्शन मुनिके इस प्रकार समझानेपर देवदत्ता निरुत्तर होगई। जैसे नागदमनी नामक औषधिसे नागिन निर्विष हो जाती है। यह सही है कि देवदत्ता सुदर्शन मुनिको कुछ उत्तर न दे सकी, पर उसकी ईर्षा पहलेसे कोई हजार गुणी बढ़ गई। फिर उसने सुदर्शनको सिर्फ यह कहकर, कि तुम्हारी यह उमर तप योग्य नहीं, तप तुम बुढ़ापेमें धारण करना, उठा कर अपने पलँग पर, जिसपर कि एक बड़ा नरम गद्दा बिछा हुआ था, लिटा लिया और काम-सुखके लिए वह उनके साथ अनेक प्रकारकी विकार चेष्टायें करने लगी। देवदत्ताको इस प्रकार उपसर्ग करते देखकर सुदर्शनने संन्यास लेकर प्रतिज्ञा की कि यदि इस उपसर्गमें मेरे प्राण चले जायँ तब तो मैं अपने आत्महितके

लिए अभीसे जीवन पर्यन्त अनशन-व्रत धारण करता हूँ और कदाचित् दैवयोगसे प्राण बच जायँ तो मैं पारणा करूँगा। यह प्रतिज्ञा कर सुदर्शन मुनिने शरीरसे मोह छोड़ दिया और काठकी तरह निश्चल होकर अपनेको भगवान्के ध्यानमें लगाया। यह देखकर दुष्टिनी देवदत्ताने मुनिके स्थिर मनको विचलित करने, उनके ब्रह्मचर्यको नष्ट करने और अपने काम-सुखकी सिद्धिके लिए उनपर उपद्रव करना शुरू किया। काम-वासनासे अत्यन्त पीड़ित होकर उसने अपने शरीर परके सब वस्त्रोंको उतार दिया और नंगी होकर वह मुनिके गलेसे लिपट गई। उनके शरीरको अपने हाथोंके बीचमें लेकर उनसे लिपट कर वह सेजपर सो रही। इतने पर भी जब मुनिको वह विचलित न कर सकी तब उसने और भी भयंकर विकार चेष्टायें करना आरंभ कीं। वह कभी मुनिकी उपस्थ इन्द्रीको अपने हाथोंसे अपने गुह्य अंगमें रखती, कभी उनके हाथोंको अपने स्तनोंपर रखती, कभी उनके मुँहमें अपना अपवित्र मुँह देती, कभी विकारोंकी गुलाम बनकर नंगी ही उनके सुन्दर शरीरपर जा पड़ती और काम-वासनासे अनेक विकार चेष्टायें करती और कभी उनके नंगे शरीरको अपने शरीरपर लिटा लेती। इत्यादि कामरूपी अग्निको बढ़ानेवाली नाना दुश्चेष्टाओंको उसने अपने मुँह, स्तन, हाथ, योनि आदि द्वारा किया; कटाक्ष किया, हाव-भाव-विलास किया, खूब मनोहर आवाजसे गाया, नाचा, सिंगार किया। मतलब यह कि उनके ब्रह्मचर्य-व्रतको नष्ट करनेके लिए उसमें जितनी शक्ति थी, उसने वेश्या-योग्य विकारोंके करनेमें कोई बात उठा न

रक्खी—मुनिपर घोरतर उपद्रव किया। जिसे देख कामी लोग अपनी कभी रक्षा नहीं कर सकते। इस महान् दुःसह उपसर्गमें भी सुदर्शन मेरुसा अचल बना रहा। उसने अपनी वैराग्य भावनाको बढ़ानेके लिए तब अपने पवित्र हृदयमें इस प्रकार विचार करना शुरू किया। वे निर्मल विचार उसकी मन-वचन-कायकी क्रियाओंको रोकनेमें बड़े सहायक हुए। उसने विचारा—ये वेश्यायें पापकी खान हैं। इन्हें नीच ऊँचके साथ विषय-सेवनका विचार नहीं। शहरकी गटरमें जैसे मल-मूत्र बहता है उसी तरह इनके यहाँ नीचसे नीच पुरुष आते रहते हैं। तब भला, ऐसी नीच इन वेश्याओंको कौन बुद्धिमान् सेवेगा। जो नीच इन मद्य-मांस खानेवाली वेश्याओंके साथ विषय-सेवन करते हैं—उनके शरीरसे अपने शरीरका सम्बन्ध कराते हैं, उस समय जो परस्परमें श्वासोश्वासका संमिश्रण होता है, उससे उन लोगोंके खाने-पीने आदिका कोई व्रत-नियम नहीं बन सकता। इनके साथ सम्बन्ध करनेसे जो गर्भ रहता है उससे उन व्यभिचारी लोगोंके कुलका नाश होता है, कलंक लगता है और सातों व्यसनोंका वे फिर सेवन करने लगते हैं। इस वेश्या-सेवनके पापसे यह तो हुई इस लोकमें हानि और परलोकमें वे विषय-लम्पटी घोर दुःखोंके देनेवाले नरकोंमें जाते हैं। इस प्रकार वेश्याओंके दोषोंपर विचार कर सुदर्शन मुनिने अपने मनको वैराग्यरूपी दृढ़ कवचसे ढक लिया और संकल्प रहित उत्कृष्ट आत्मध्यानमें उसे लगाकर आप मेरुसा स्थिर

होगया–सब क्रिया-कर्मसे रहित हो वह बड़ी स्थिरतासे ध्यान करने लगा । धन्य महात्मा सुदर्शन !

देवदत्ता उन्हें फिर उसी तरह ध्यान-निश्चल देखकर ईर्षासे दुःख देनेवाले कामविकारोंके करनेको तैयार होगई और मुनिसे बोली–सुनो, मैं तुमसे अन्तिम बात कहती हूँ। यदि तुम मेरी बात न मानोगे तो मैं अब ऐसा घोर उपद्रव करूँगी कि उससे तुम्हारी जान ही चली जायगी । इसपर सुदर्शन कुछ न कहकर ध्यान करते रहे । उन्हें कुछ न कहते देखकर देवदत्ताने उनसे अनेक प्रकार कामके बढ़ानेवाले वचन कहे, उनकी गुह्येन्द्रीको अपने हाथोंसे उत्तेजित कर कामको बढ़ानेवाली नाना भाँति विकार चेष्टायें कीं और मनमानी बुरी-भली सुनाई । इस प्रकार कोई तीन दिन और तीन राततक उसने जितना उससे बना, मुनिपर उपसर्ग किया, उन्हें दुःसह कष्ट दिया । पर सुदर्शनने पर्वतके समान स्थिर हो इन सब दुःसह परिषहोंको सहा– महातपस्वी, महामना सुदर्शन ऐसे समय भी रत्तीभर अपने ध्यानसे न चले। देवदत्ताने सुदर्शनको इतना कष्ट दिया उससे न तो उन्हें उसपर कुछ द्वेष हुआ और न उसकी काम-सुख सम्बन्धी बातोंसे उन्हें किसी प्रकारका रागभाव–प्रेम हुआ। उन्होंने द्वेष या प्रेम सम्बन्धी कलुषताका हृदयमें विचारतक भी न आने दिया। वे मध्यस्थ बने रहे। इससे उनके हृदयकी जो निर्मलता थी वह आत्म-ध्यानके सम्बन्धसे बहुत ही बढ़ गई। सुदर्शनको ऐसा स्थिर अचल देखकर देवदत्ता उद्विग्न तो बहुत हुई, पर वह उस अग्निकी तरह, जो तृण रहित जमीनपर

पड़ी कुछ कर नहीं सकती, सुदर्शनका कुछ कर न सकी। जिसकी इतनी धीरता, जिसका मन इतना अविकारी उस महात्माका दुष्ट पुरुष वा विकार-वश हुई वेश्या क्या कर सकती है। यह संभव है कि कभी दैवयोगसे पर्वत जल जायँ, पर यह कभी संभव नहीं कि योगियोंका निर्विकल्प मन विकारोंसे चल जाय। वे महात्मा धन्य हैं और वे ही संसारमें पूज्य हैं जिनका मन दुःसह परीषह या कष्टोंके आनेपर भी न चला। सुदर्शनकी इस स्थिरताने देवदत्ताके अभिमानको नष्ट कर दिया। वह सोचने लगी, यह बड़ा धीरजवान् है—इसे मैं किसी तरह विचलित नहीं कर सकती। इसे मैं अब अपने घरसे बाहर भी कैसे करूँगी? इस विचारके साथ उसे एक युक्ति सूझी। रातका समय तो था ही और मुनि भी शरीरका मोह छोड़कर आत्मध्यान कर रहे थे, सो इस योगको अच्छा समझ देवदत्ता मुनिको कन्धेपर उठाये घरसे निकली और चौकन्नी हो इधर उधर देखती हुई जलती चितासे भयंकर मसानमें ले-जाकर उसने उन्हें कायोत्सर्ग ध्यानसे खड़ा कर दिया।

इस प्रकार अपने आत्मबलसे जिस महात्मा सुदर्शनने देवदत्ता द्वारा किये गये, ब्रह्मचर्यको नष्ट करनेवाले दुःसह काम-विकारोंपर विजय लाभ किया, और जो अपने मन-वचन-कायकी क्रियाओंको रोककर ऐसा बलवान् बन गया कि जिसे पर्वत भी विचलित नहीं कर सकते थे। यह जानकर बुद्धिमानोंको परीषह-जय द्वारा अपना आत्मबल प्रकट करना चाहिए।

वे अर्हन्त भगवान्, जो संसार द्वारा वंदनीय और सब जीवोंका

हित करनेवाले, सब दोषोंसे रहित और सर्वोत्कृष्ट हैं; वे सिद्ध भगवान्, जो उत्कृष्ट गुणोंके धारक और अन्त रहित हैं—जिनका कभी नाश न होगा; वे आचार्य, जो सदा धर्म-साधनमें तत्पर और पंचाचारके पालनेवाले हैं तथा बुद्धिमान् लोग जिन्हें नमस्कार करते हैं; और वे विद्वान् उपाध्याय तथा साधु—ये पाँचों परमेष्ठी मुझे अपने अपने गुण प्रदान करें—मुझे अपना सरीखा महान् योगी बनावें।

आठवाँ परिच्छेद।

सुदर्शनका निर्वाण-गमन।

जिन्होंने सब कर्मोंको जीत लिया, उन परम धीर और गुणोंके समुद्र सुदर्शन मुनिको मैं नमस्कार करता हूँ। वे मुझे अपनी शक्ति प्रदान करें।

देवदत्ता उन्हें मसानमें खड़ा कर चली गई। वे उसी तरह स्थिर-मन, जितेन्द्री और निर्विकार हो ध्यान करते रहे। इसी समय वह जो पूर्व जन्ममें अभयमती रानी थी और जिसने पहले भी सुदर्शन मुनिपर उपसर्ग किया था, विमानमें बैठी हुई आकाश मार्गसे जा रही थी। मुनिके ऊपर ज्यों ही उसका विमान आया कि वह मुनिके योग-प्रभावसे आगे न बढ़ पाया—वहीं कीलित हो गया। विमानको ठहरा देख व्यन्तरीको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने तब विमानके ठहर जानेका कारण जाननेके लिए

चारों ओर नजर दौड़ाई। उसे नीचेकी ओर दिखाई दिया कि सब परिग्रह रहित, परम गुणवान् और अपने शरीरतकसे मोह छोड़े हुए एक दिगम्बर महात्मा ध्यान कर रहे हैं। उन्हें देखते ही व्यन्तरीके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। उसने कु-अवधिज्ञानसे मुनिके साथ जिस कारण उसकी शत्रुता हुई थी उसे जान लिया। उसे यह भी ज्ञान होगया कि इन मुनिने मेरी रति-कामनाको भी पूरा नहीं किया था, और इसी कारण मुझे मरना पड़ा था। तब उस वैरका बदला चुकानेके लिए उसने मुनिपर उपसर्ग करना विचारा। वह आकाशसे नीचे उतरकर सुदर्शनके पास आई और अपनी बड़ी डरावनी क्रूर सूरत बना मुनिसे बोली—सुदर्शन, मुझे खूब याद है कि मैं पूर्व जन्ममें एक राजरानी थी। मैंने तब बड़ी आशासे तेरे साथ संभोग-सुखकी इच्छा की थी; पर तूने अपने इस धीरताके अभिमानमें आकर मेरी उस इच्छाका तिरस्कार किया था। उसी दुःखके मारे मरकर मैं इस जन्ममें व्यन्तरी हुई। मैंने पहले भी तुझपर उपसर्ग किया था, पर उस समय किसी देवने तुझे मौतके मुखसे बचा लिया था। अस्तु, अब बतला कि इस समय मैं जो तुझे कष्ट दूँगी, उनसे तेरी कौन रक्षा करेगा? इस प्रकार कड़े वचनोंके साथ उस पापिनीने मुनिपर उपसर्ग करना शुरू किया। उसे विक्रियाऋद्धि तो प्राप्त थी ही, सो उसने नाना भाँतिकी भयावनी और क्रूर सूरतें बनाकर मुनिको डराया, अनेक दुर्वचन कहे, बाँधा, मारा-पीटा। उन्हें कष्ट देनेमें उसने कोई कमी न रक्खी। उस समय मुनिके योगबलसे देवोंके आसन कम्पित हुए। जिस देवने सुदर्शनका उपसर्ग पहले भी दूर

किया था वही अपने आसनके कम्पित होनेसे सुदर्शनपर फिर उपसर्ग हुआ जानकर उसी समय वहाँ आया। सुदर्शनकी उसने तीन प्रदक्षिणा दी, पूजा की और उन्हें नमस्कार कर वह उस व्यन्तरीसे बोला—देवी, तुझे इन महा मुनिपर उपसर्ग करना उचित नहीं। वह धर्मका नाश करनेवाला, पापका खान, निंदनीय और नरकोंमें लेजानेवाला है। जो पापी लोग इन मुनियोंकी निन्दा करते हैं, वे नरकादि दुर्गतिमें भव भवमें निन्द्राके पात्र होते हैं। जो मूर्ख इन निस्पृह महात्माओंको कष्ट देते हैं—दुःख पहुँचाते हैं वे दुर्गतियोंमें महान् दुःख उठाते हैं। और जो इनका मन-वचन-शरीरसे थोड़ा भी बुरा चिंतन करते हैं वे पग-पगपर हजारों दुखोंको भोगते हैं। देवी, यह सब जानकर तुझे इन महात्माके साथ शत्रुता करना उचित नहीं। तू इनकी भक्ति कर, इनके हाथ जोड़ जिससे तेरा कल्याण हो। कारण जो योगियोंकी भक्ति करते हैं वे उस पुण्यके उदयसे सब जगह सौभाग्य, सुख-सम्पत्ति प्राप्त करते हैं। जो मुनियोंके चरण-कमलोंमें अपना मस्तक नवाते हैं उन्हें फिर इन्द्रादि देवतक पूजते हैं—नमस्कार करते हैं। और जो भव्यजन ऐसे योगियोंके चरणोंकी पूजा करते हैं वे सारे संसार द्वारा पूज्य होते हैं। इत्यादि गुण-दोष, हानि-लाभ विचार कर तुझे उचित है कि इनके साथ ईर्षा भाव छोड़कर तू अपने कल्याणके लिए इनकी भक्ति करे। यक्षने व्यन्तरीको इस प्रकार बहुत समझाया, पर इससे उसको रंचमात्र भी शान्ति न हुई। किन्तु उसने उलटी लाल आख कर उस यक्षको घुड़की बताना चाहा। उसकी यह दशा देख यक्षने सोचा—दुष्टोंको दिया धर्मोपदेश

उन्हें शान्ति न पहुँचाकर उनकी क्रोधाग्निको और भड़का देता है। ऐसे लोगोंको समझाना सर्पको दूध पिलानेके बराबर है। यक्षने अपने कहेका कुछ उपयोग होता न देखकर देवीको जरा कड़े शब्दोंमें फटकारा और मुनिका उपसर्ग दूर करनेके लिए वह बोला—पापिनी दुराचारिणी, मुनिपर जो तूने उपसर्ग करना विचारा है, याद रख इस महापापसे तुझे दुर्गतिमें जो दुःख भोगना पड़ेगा वह वचनों द्वारा नहीं कहा जा सकता। इसलिए मैं तुझे समझाता हूँ कि तू मेरे कहनेसे अपने इस दुराग्रहको छोड़ दे। यदि तूने अब भी अपने आग्रहको न छोड़ा तो फिर मुझे भी तुझे इसका प्रायश्चित्त देनेके लिए लाचार हो तैयार होना पड़ेगा। अब भी अपने भलेके लिए समझ जा। व्यन्तरी उसकी फटकारसे शान्त न हुई, किन्तु क्रोधान्ध हो उससे लड़नेको तैयार होगई। दोनोंमें बड़ी भारी लड़ाई छिड़ी। दोनों-हीको विक्रियाऋद्धि प्राप्त, तब उनके बलका क्या पूछना? दोनों-हीने अपनी अपनी दैवी शक्तिसे अनेक नये नये आयुध आविष्कार किये, अनेक विद्यायें प्रगट कीं और भयानक लड़ाई लड़ी। उनकी यह लड़ाई कोई सात दिनतक बराबर चलती रही। आखिर व्यन्तरीकी शक्ति शिथिल पड़ गई। यक्षको विजयश्री प्राप्त हुई। व्यन्तरी उसके सामने अब ठहर न सकी। वह भाग गई।

इसी समय महायोगी सुदर्शनने योग-निरोध कर क्षपकश्रेणी आरोहण की, जो मोक्ष जानेके लिए नसैनी जैसी है। इसके बाद उन्होंने आत्मानुभवसे उत्पन्न हुए और कर्मरूपी वनको भस्म करने-वाले शुक्लध्यानके पहले पायेका निर्विकल्प निरानन्दमय हृदयमें ध्यान

करना शुरू किया । इस ध्यानके बलसे परमानन्द स्वरूप सुदर्शनके बहुतसी कर्म-प्रकृतियोंके साथ साथ मोहनीय कर्मका नाश हो गया। इस प्रकार मोहशत्रु पर जयलाभ कर इनने शीलरूपी कवच द्वारा अपने आत्माको ढका और गुणसेनाको लिये ये चारित्ररूपी रण-भूमिमें उतरे। यहाँ ये उपशमरूपी हाथीपर चढ़कर ध्यानरूपी खड्गको हाथमें लिये कर्मशत्रुओं पर विजय करनेके लिए एक वीर योद्धासे शोभने लगे। यहाँ इनने बड़ी शीघ्रताके साथ उज्ज्वल कर-परिणामोंको उन्नत कर एक ऐसी छलाँग मारी कि देखते देखते अत्यन्त दुर्लभ और केवलज्ञानके कारण क्षीणकषाय नामके गुणस्थानको प्राप्त कर लिया। फिर शेष बचे एक योगके द्वारा शुद्ध हृदयसे दूसरे शुक्ल-ध्यान एकत्ववितर्क-अविचारका, जो मणिमय दीपककी तरह प्रकाश करनेवाला है, इनने ध्यान किया। इस ध्यानके बलसे बाकी बचे तीन घातिया कर्मोंका भी इन्होंने नाश कर दिया। जैसे राजा अपने शत्रुओंको नष्ट कर देता है। इस प्रकार त्रेसठ कर्मप्रकृतियोंका नाश कर सुदर्शनने आत्मशत्रुओं पर विजय-लाभ किया। इसी समय इस अपूर्व विजय-लाभसे लोकालोकका प्रकाशक, जगत्पूज्य और मुक्ति-सुन्दरीके मुख देखनेको काच जैसा केवलज्ञान इन्हें प्राप्त होगया। इसीके साथ इन्हें नौ केवललब्धियाँ प्राप्त हुईं। वे ये हैं—अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तदान, धर्मोपदेश कृत अनन्तलाभ, पुण्यसे होनेवाला पुष्पवृष्टि आदि रूप अनन्तभोग-समवशरण सिंहासनादिरूप अनन्तउपभोग, जिसकी शक्तिका पार नहीं ऐसा अनन्तवीर्य, क्षायिकसम्यक्त्व और चन्द्रमाके समान निर्मल यथाख्यातचारित्र।

प्राप्त हुए इस केवलज्ञानके प्रभावसे सहसा स्वर्गके देवोंके आसन कम्पित हुए, मुकुट विनम्र हुए, महलोंमें फूलोंकी वर्षा हुई, नाना भाँतिके बाजे बजे। इनके सिवा और भी कितने ही आश्चर्य हुए। इन आश्चर्योंसे चारों कायके देवोंने अन्तःकृत केवली सुदर्शनको केवलज्ञान हुआ जान लिया। तब उन्होंने अंजलि जोड़कर भगवान्को परोक्ष ही नमस्कार किया और उनके ज्ञानकल्याणकी पूजनको वे तैयार हुए।

इन्द्रने तब पहले ही भगवान्के विराजनेको गंधकुटीके रचनेकी कुबेरको आज्ञा की। इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने आकर एक भव्य और सुन्दर सुवर्णमय गन्धकुटी बनाई। उसमें उसने नाना भाँतिके सुन्दर सुन्दर रत्नोंकी जड़ाई की। ध्वजा, सिंहासन, छत्र, चवँर आदि द्वारा उसे विभूषित किया। मानस्तंभोंकी रचना की। भगवान्के द्वारा भव्यजन धर्म लाभ करें, संसारके जीवोंका कल्याण हो यह उसका उद्देश्य था।

इसके बाद सब देवगण अपने अपने विमानोंपर चढ़कर दिव्य वैभवके साथ जय-जयकार करते, गाते बजाते और दसों दिशाओंको शब्दमय करते भगवान् सुदर्शनके केवलज्ञानकी पूजाके लिए आये। उनके साथ उनकी देवियाँ भी आईं। उनका धर्म-प्रेम उनके आनन्दमय प्रसन्न चेहरेसे टपका पड़ता था। भगवान् जहाँ गंधकुटीपर विराजे थे, वहाँ आकर पहले ही उन्होंने गंधकुटीकी तीन प्रदक्षिणा की और फिर सब शरीर झुका भगवान्को पंचांग नमस्कार किया। इसके बाद उन्होंने बड़ी भक्तिके साथ

सुवर्ण-रत्नमयी झारीमें भरे जल, मलयागिरि चन्दन, मोतियोंके अक्षत, कल्पवृक्षोंके फूल, अमृतके बने नैवेद्य, मणिमय प्रदीप, दशाङ्ग धूप, सुन्दर और सुगन्धित फल आदि स्वर्गीय द्रव्यों द्वारा भगवान्‌के चरण-कमलोंकी पूजा की, फूलोंकी वर्षा की, नृत्य किया, गाया, बजाया और खूब आनन्द-उत्सव मनाया। उनका पूजा द्रव्य, उनका गीत संगीत देखकर लोगोंको आश्चर्य होता था। उनकी सभी बातें निरुपम थीं। भक्तिके वश हुए वे सब देवगण पूजन पूरी हुए बाद भगवान्‌को नमस्कार कर उनकी स्तुति करने लगे—

भगवन्, आप धन्य है। आपकी यह अद्भुत धीरता हमें आश्चर्य पैदा कर रही है। आप अनन्त कष्टोंके जीतनेवाले महान् पर्वत हैं। प्रभो, आप ही पूज्योंके पूज्य, गुरुओंके गुरु, ज्ञानियोंके ज्ञानी, देवोंके देव, योगियोंके योगी, तपस्वियोंके तपस्वी, तेजस्वियोंके तेजस्वी, गुणियोंके गुणी, विजेताओंके विजेता, और प्रतापियोंके प्रतापी हैं। स्वामी, आप ही हमारे मनोरथोंके पूरे करनेवाले और दिव्य रूपके धारी हैं; संसारके स्वामी और भव्यजनोंके हितमें तत्पर रहते हैं; केवलज्ञानरूपी नेत्रसे युक्त और संसारमें आनन्दके बढ़ानेवाले हैं; सब देवगण तथा चक्रवर्ती आदि महा पुरुषों द्वारा पूज्य और भव्यजनोंको संसार-समुद्रसे पार करनेवाले परम बन्धु हैं। भगवन्, आप ही हमें इन्द्रिय-सुख एवं शिव-सुखके देनेवाले हैं। प्रभो, आपके समान उपसर्गोंका जीतनेवाला धीर इस समय संसारमें कोई नहीं। नाथ, यही क्या किन्तु आपमें तो अनन्त गुण हैं। उनका वर्णन गणधर भगवान् तक तो कर ही नहीं सकते तब हमसे

अल्पज्ञोंकी, जो एक बहुत ही साधारण ज्ञान रखते हैं, क्या चली। कृपाके भंडार, यही समझ हमने आपकी स्तुतिके लिए अधिक कष्ट उठाना उचित न समझा। आप गुणोंके समुद्र हैं, अनन्त-चारित्र और अनन्त-सुखके धारक हैं, दिव्यरूपी और परमात्मा हैं-सबसे उत्कृष्ट हैं, मुक्ति-सुन्दरीके स्वामी और आनन्दके देनेवाले हैं। इसलिए भक्तिपूर्वक आपके चरण-कमलोंको हम नमस्कार करते हैं। गुणसागर, हमने जो आपकी स्तुति की वह इस आशासे नहीं कि आप हमें संसारकी उच्चसे उच्च धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्य-वैभव दें; किन्तु हम चाहते हैं आपकी सरीखी आत्मशक्ति, जिसके द्वारा मोक्ष-मार्गको सुख-साध्य बना सकें। कृपाकर आप हमें यही शक्ति भीखमें दें, यह हमारी सानुरोध सानुनय आपसे बार बार प्रार्थना है। देवता लोग इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति-प्रार्थना कर धर्मोपदेश सुननेके लिए भगवान्‌के चारों ओर बैठ गये। तब भगवान् सन्मार्गकी प्रवृत्तिके लिए दिव्यध्वनि द्वारा धर्मतत्वका, जिसमें कि सब पदार्थ गर्भित हैं, उपदेश करने लगे। वे बोले—भव्यजनो, तुम आत्महित करना चाहते हो, तो इन विषयरूपी चोरोंको नष्टकर धर्मका पालन करो। यह धर्म स्वर्ग और मोक्ष-लक्ष्मीकी प्राप्तिका वशीकरण मंत्र है। इस धर्मके दो भेद हैं। पहला यतिधर्म और दूसरा श्रावकधर्म या गृहस्थधर्म। श्रावकधर्म सुख-साध्य है और स्वर्गका कारण है। मुनिधर्म कष्ट-साध्य है और साक्षात् मोक्षका कारण है। मुनिधर्ममें किसी प्रकारका आरंभ-सारंभ, वणिज-व्यापार नहीं किया जाता।

वह सर्वथा निष्पाप है, परमोत्कृष्ट है; साररूप है और सुखका समुद्र है।

सम्यग्दर्शनके साथ सप्त व्यसनका त्याग, आठ मूलगुणोंका धारण, बारह व्रतोंका पालन और ग्यारह प्रतिमाओंका ग्रहण, यह सब श्रावकधर्म है। श्रावकधर्म एक देशरूप होता है। एकदेशका मतलब यह है कि जैसे ब्रह्मचर्यव्रत दोनों ही धर्मोंमें धारण किया जाता है। गृहस्थधर्मका पालन करनेवाला अपनी स्त्रीके साथ संबन्ध कर सकता है; पर मुनिधर्मका पालक स्त्री-मात्रका त्यागी होता है। इसी प्रकार अहिंसाव्रत सत्यव्रत, अचौर्यव्रत, परिग्रह-परिमाणव्रत आदिमें समझना चाहिए। इसके सिवा मुनिधर्ममें और भी कई विशेषतायें हैं।

उक्त बातोंके सिवा श्रावकधर्मकी और भी कई बातें हैं। और वे श्रावकोंके लिए आवश्यक हैं। जैसे अपनी आयुष्यके बढ़ानेवाली जिनभगवान्की पूजा करना, निर्ग्रन्थ गुरुओंकी भक्ति पूर्वक उपासना—सेवा करना, जैनशास्त्रोंका स्वाध्याय करना, व्रत-संयमका पालना, बारह प्रकार तप धारण करना और आहारदान, औषधिदान अभयदान तथा ज्ञानदान इन चार दानोंका देना। ये छह ग्रहस्थोंके नित्यकर्म कहलाते हैं। इस श्रावक धर्मको जो सम्यंदर्शन सहित पालन करते हैं वे सर्वार्थसिद्धिका सुख लाभ कर क्रमसे मोक्ष जाते हैं।

मुनिधर्म महान् धर्म है। इसमें तेरह प्रकार चारित्र, अट्ठाईस मूलगुण, चौरासी लाख उत्तरगुण और बारह प्रकार तप धारण

किया जाता है। मन-वचन-कामकी क्रियाओंको रोका जाता है, और उत्तम-क्षमा, उत्तम-मार्दव आदि धर्मके दस परम लक्षणोंका पालन किया जाता है। मोक्षका साक्षात् प्राप्त करानेवाला यही धर्म हैं। इसे संसार-शरीर-भोगादिसे सर्वथा मोह छोड़े हुए मुनि ही धारण कर सकते हैं। जो रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके धारी इस यति-धर्मको धारण करते हैं वे संसार-पूज्य होकर अन्तमें मोक्ष लक्ष्मीके स्वामी होते हैं।

जिन शासनमें सात तत्व कहे गये हैं। वे हैं—जीव, अजीव, आस्त्रव, वन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। इनका यथार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शनका कारण है। इनका संक्षेप स्वरूप इस प्रकार है—

जीव उसे कहते हैं—जिसमें चेतना—जानना और देखना पाया जाय। जो व्यवहारसे दस प्राणों और निश्चयसे चार प्राणोंका धारक हो, उपयोगमय हो, अनादि हो, अपने कर्मोका कर्त्ता और भोक्ता हो तथा अनन्त गुणोंका धारक हो।

अजीव उसे कहते हैं—जिसमें चेतना—देखना-जानना न पाया जाय। इसके पाँच भेद हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। पुद्गल वह है—जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण ये चार बातें हों। धर्म वह है—जो जीव और पुद्गलोंको चलनेमें सहायता दे। जैसे मछलीको जल। अधर्म वह है—जो उक्त दोनों द्रव्योंको ठहरानेमें सहायता दे। जैसे रास्तागीरको वृक्षोंकी छाया। आकाश उसे कहते हैं—जो सब द्रव्योंको स्थान-दान दे। कालके दो भेद हैं। व्यवहार-काल और निश्चय-काल। व्यवहार-काल वर्ष, महीना, दिन, प्रहर,

घड़ी, मिनिट, सैकेंड—आदि रूप है। और निश्चय-काल परिवर्तन रूप है। वह पुद्गलादि द्रव्योंके परिणमनसे जाना जाता है। अर्थात् उनकी जो समय समयमें जीर्णता नवीनता रूप पर्यायें बदला करती हैं वे ही 'निश्चयकाल कोई खास द्रव्य है', ऐसी विश्वास कराती है।

आस्रव—मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय, आदि द्वारा जो कर्म आते हैं वह आस्रव है। यह संसारमें जीवोंको अनन्त काल तक भ्रमण कराता है।

बन्ध—कर्म और आत्माका परस्परमें एकक्षेत्ररूप होना बन्ध है। जैसे दूधमें पानी मिला देनेसे उन दोनोंकी पृथक् पृथक् सत्ता नहीं जान पड़ती। बन्धके—प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबंध, स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध ऐसे चार भेद हैं। यह बन्ध सब दुःखोंका कारण है।

संवर—आत्म-ध्यान, व्रत, तप आदि द्वारा कर्मोंके आगमनको रोक देनेको संवर कहते है। यह मोक्षका कारण है, इसलिए इसे प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिए।

निर्जरा—पूर्वस्थित कर्मोंका थोड़ा थोड़ा क्षय होनेको निर्जरा कहते हैं। इसके दो भेद हैं। सविपाकनिर्जरा और अविपाकनिर्जरा। कर्म अपना फल देकर जो नष्ट हो वह सविपाकनिर्जरा है और तपस्या द्वारा जो कर्म नष्ट किये जायँ वह अविपाकनिर्जरा है।

मोक्ष—आत्माके साथ जो कर्मोंका सम्बन्ध हो रहा था उसका सर्वथा नष्ट हो जाना— आत्मासे कर्मोंका सदाके लिए सम्बन्ध छूट जाना वह मोक्ष है। कर्मोंका सम्बन्ध छूटनेसे आत्मा अत्यन्त शुद्ध हो जाता है। फिर कभी उसके साथ कर्मोंका

सम्बन्ध नहीं होता। इस अवस्थामें आत्मा अनन्त गुणका धारी हो जाता है। इन सात तत्वोंके शंकादि दोष रहित श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन मोक्ष प्राप्त करनेकी पहली सीढ़ी है। पदार्थोंका जैसा स्वरूप है उसे वैसा जानना सम्यग्ज्ञान है। यह ज्ञान संसारसे अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाला दीपक है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि पाँच पापोंके छोड़ने तथा पाँच समिति और तीन गुप्तिके पालनेको सम्यक्चारित्र कहते हैं। इस प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंको व्यवहार रत्नत्रय कहते हैं। यह सब प्रकारके अभ्युदय और रिद्धि-सिद्धिका देनेवाला है। इसके फलसे आत्मा सर्वार्थसिद्धि लाभ करता है। यह हुआ व्यवहार रत्नत्रय। और निश्चय रत्नत्रयका स्वरूप इस प्रकार है।

ज्ञानी पुरुष अनन्त गुणमय अपने आत्माका जो हृदयमें श्रद्धान करते हैं वह निश्चय सम्यग्दर्शन है, केवलज्ञानस्वरूप सिद्ध समान आत्माका जो अनुभव करते हैं—उसे जानते हैं वह निश्चय ज्ञान है और परम-आनन्दके समुद्ररूप अपने आत्माका हृदयमें आचरण करते हैं—पर पदार्थोंमें राग-द्वेष करते हुए आत्माको उस ओरसे हटा कर अपने आपमें स्थिर करते हैं वह निश्चय सम्यक् चारित्र है। यह निश्चय रत्नत्रय उसी भवसे मोक्ष-प्राप्तिका कारण और वाह्य चिन्ताओंसे रहित सब गुणोंका स्थान है। इस प्रकार रत्नत्रयके दो भेद होनेसे मोक्षमार्गके भी दो भेद होगये। मोक्षकी इच्छा करनेवालेको यह रत्नत्रय धारण करना चाहिए। यह मुक्ति-स्त्रीका एक महान् वशीकरण है। मोहका नाश कर जो भव्यजन

मोक्षको गये और जायँगे वे इसी दो प्रकारके रत्नत्रय द्वारा । इसे छोड़कर मोक्ष जानेका और कोई मार्ग नहीं है । यह जानकर बुद्धिमानोंको इस इन्द्रियोंके स्वामी मोह-शत्रुका नाश कर आत्महितके लिए दो प्रकारका रत्नत्रय धारण करना चाहिए ।

इस प्रकार सुदर्शन केवलीके मुख-चन्द्रमासे झरे धर्मामृतको पीकर देव और नर बहुत सन्तुष्ट हुए। उस समय कितने ही भव्य-जनोंको मोक्ष-मार्गका स्वरूप जानकर वैराग्य होगया। उन्होंने मोहका नाश कर पवित्र जिनदीक्षा ग्रहण करली। कितनोंने भगवान्‌के द्वारा धर्मका स्वरूप सुनकर धर्मसिद्धि और मोक्षके लिए अणुव्रत आदि व्रतोंको धारण किया। कितनी विवेकिनी स्त्रियोंने उपचार-महाव्रत ग्रहण किया। कितनीने श्राविकाओंके व्रत लिये। कितने पशुओंने भी भगवान्‌के द्वारा बोधको प्राप्त होकर धर्म प्राप्तिके लिए काललब्धिके अनुसार अपने योग्य व्रतोंको ग्रहण किया। कुछ देवों, कुछ मनुष्यों, कुछ देवियों और कुछ स्त्रियोंने चन्द्रमाके समान निर्मल सम्यक्त्वको ही धारण किया। उस व्यन्तरीने भी भगवान्‌के मुखसे धर्मरसायनका पान कर हलाहल विषके समान मिथ्यात्वको मन-वचन-कायसे छोड़ दिया। अपनी आत्माकी बड़ी निन्दा कर उसने भगवान्‌के चरणोंको नमस्कार कर मोक्ष प्राप्तिके अर्थ मन-वचन-कायकी शुद्धिपूर्वक सम्यग्दर्शन ग्रहण किया। और जो वह अभयमतीकी धाय तथा वेश्या थी उन सबने सुदर्शन केवलीके मुँहसे धर्मका उपदेश सुनकर अपने पापकर्मपर बड़ा दुःख प्रगट किया—अपनी उन्होंने बड़ी निन्दा की

ईसके बाद देवतों, चक्रवर्त्तियों, विद्याधरों आदि द्वारा सेवनीय सर्वज्ञ सुदर्शन मुनिके चरणोंको नमस्कार कर उन सबने अपने अपने योग्य व्रत ग्रहण किये। सुदर्शनकी स्त्री मनोरमा सुदर्शनको केवलज्ञान हुआ सुनकर अपने पुत्रके मना करनेपर भी धर्म-सिद्धिके लिए सुदर्शन केवलीके पास आई। उन्हें नमस्कार कर उसने भगवानका उपदेश सुना। उससे उसे बड़ा वैराग्य होगया। उसने मोक्ष प्राप्तिकी कारण जिनदीक्षा स्वीकार करली।

इसके बाद सुदर्शन केवली भव्यजनोंको बोध देने और मोक्ष-मार्गका प्रचार करनेके लिए चारों संघोंके साथ नाना देश और नगरोंमें विहार करने लगे। उन लोकनाथ भगवान्ने अपने धर्मो-पदेशामृतसे अनेक जनोंको सन्तुष्ट किया, अनेकोंको मोक्षमार्गमें लगाया, अनेकोंको अनमोल रत्नत्रयसे विभूपित किया, अनेकोंको जगत्का हित करनेवाले सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान ये महान् रत्न दिये, अनेकोंको धर्म-रत्न दिया और अनेकोंको तप-रत्न दिया। इस प्रकार सब संसारके जीवोंको महान् दान देकर भगवान् सुदर्शन कल्पवृक्षकी तरह शोभाको प्राप्त हुए।

अन्तमें भगवान्ने योग-निरोध कर धर्मोपदेश करना छोड़ दिया और शिव-सुखकी प्राप्तिके लिए चौदहवाँ गुणस्थान प्राप्त कर निःक्रिय अवस्था धारण करली। इसके बाद वे शुक्लध्यानके तीसरे पायेको छोड़कर अन्तिम व्युपरतक्रियानिर्वृत्ति नाम ध्यान करने लगे। यह ध्यान कर्म-शत्रु और शरीरादिकका नाश करनेवाला तथा मोक्षका

प्राप्त करानेवाला है। इस ध्यानके पहले समयमें भगवान्ने बहत्तर प्रकृतियोंका नाश किया और अन्तिम समयमें तेरह प्रकृतियोंका। इस प्रकार सुदर्शन केवली भगवान्ने सब कर्म और तीनों शरीरका नाश कर अनन्त-दर्शन आदि आठ श्रेष्ठ गुणोंको प्राप्त किया। वे संसार वन्दनीय हुए। पौष सुदी पंचमीको भगवान्ने; स्वभावसे ऊँचेकी ओर जानेवाले एरंडके बीजकी तरह ऊर्ध्वगमन कर मोक्ष लाभ किया। वहाँ वे सिद्ध भगवान् नित्य, अपने आत्मानन्दसे प्राप्त हुए, घट-बढ़ रहित, बाधा-हीन, निरुपम, अतीन्द्रिय, दुःखरहित, और अन्य द्रव्योंकी सहायरहित लोकाग्र-भागका अनन्त-सुख भोगते हैं और अनन्त कालतक भोगेंगे। इन्द्रादिक देवतों, विद्याधरों चक्रवर्त्तियों तथा भोगभूमिमें उत्पन्न लोगोंने जो सुख भोगा, जो सुख वे भोगते हैं तथा आगे भोगेंगे उस सब सुखको मिलाकर इकट्ठा कर देनेपर भी वह सिद्धोंके एक समयमें भोगे हुए सुखकी भी तुलना नहीं कर सकता। उस सुखका शब्दों द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। वह वचनोंके अगोचर है।

पहले जो धात्रीवाहन आदि राजा लोग मुनि हुए थे उनमें कितने तप द्वारा कर्मोंका नाशकर मोक्ष चले गये। कितने अपनी शक्तिके अनुसार की हुई तपस्यासे सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि गये। कितनी शुद्ध सम्यग्दर्शनको धारण करनेवाली आर्यिकायें तपके प्रभावसे निंद्य स्त्रीलिंगका नाशकर सौधर्म स्वर्गमें गईं। कितनी अच्युत स्वर्गको गईं। कितनी अच्युत स्वर्गमें देव हुईं और कितनी उसी स्वर्गमें सुख देनेवाली देवियाँ हुईं।

इस प्रकार नमस्कार-गर्भित केवल एक अर्हन्त भगवान्‌के नाम-स्मरणरूप पदके प्रभावसे अर्थात् 'णमो अरहंताणं' इस पदके ध्यानसे एक सुभग नाम ग्वाला दूसरे जन्ममें जगका आदर-पात्र, बड़ा भारी धनी, धर्मबुद्धि और मुक्ति-स्त्रीका प्यारा सुदर्शन हुआ ।

जो संसारके बुद्धिमानों द्वारा स्तुति किया गया, जो अनन्त गुणोंका समुद्र हुआ और जो मुक्ति-वधूका प्यारा प्रेमी बना उस सुदर्शनको मैं नमस्कार करता हूँ; वह मुझे शिवका देनेवाला हो ।

मनुष्य और देवों द्वारा किये गये उपद्रवोंसे जो चलायमान न होकर पर्वत समान तपमें अचल बना रहा और जिसने कैवल्य प्राप्तकर मुक्ति लाभ की वह सुदर्शन मुझे शक्ति दे ।

जो संसारमें परम सुन्दर कामदेव, धीर, दक्ष और प्रतापी हुआ, जिसने सब परिषहों—कष्टोंपर विजय प्राप्त की उस सुदर्शनको परमार्थ सिद्धिके लिए मैं वन्दना करता हूँ ।

केवलज्ञानके समय जिन्हें इन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र, आदिने विभूषित किया, जिनका जन्म वैश्यकुलमें हुआ, जो बड़े धर्मात्मा और दिव्य सुन्दरतासे युक्त थे, जो अनन्त गुणोंके समुद्र और महा बलवान् थे, जो बड़े ही पवित्र थे और जिनने कर्म-पर्वतको तप-वज्रसे तोड़कर निर्वाणरूपी सुख-रत्न प्राप्त किया उन मुनि-श्रेष्ठ सुदर्शनको मैं नमस्कार करता हूँ और उनकी स्तुति करता हूँ । वे मुझे अपनीसी शक्ति दें ।

इस प्रकार भक्तिसे जिनकी मैंने स्तुति की, जिसने चंचल स्त्रियोंपर असाधारण विजय प्राप्त कर अपनी दृढ़ चारित्रता प्रगट की, जो

कर्मोंका नाशकर मोक्ष गये, अनेक गुणोंसे युक्त वे सुदर्शन योगिराज मुझे—जिसमें कर्मोंका नाश वह मौत, दुःख-रहित मोक्ष, दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी विशुद्धता करनेवाले अपने गुण और मोक्ष जानेको अपनी शक्ति, ये सब बातें दें।

मेरे (सकलकीर्तिके) द्वारा रचा गया यह पवित्र और कल्याणका करनेवाला सुदर्शन महामुनिका चरित्र इस पृथ्वीतलमें विद्वानों द्वारा वृद्धिको प्राप्त हो—इसका खूब प्रचार हो।

सब संसार जिनकी स्तुति करता है वे भुक्ति-मुक्तिको देनेवाले तीर्थंकर, सत्पुरुषोंको सब सिद्धिके देनेवाले और उत्कृष्ट अनन्त सिद्ध परमेष्ठी, पञ्चाचार पालनमें तत्पर आचार्यगण, ज्ञानके समुद्र उपाध्याय और पाप नाश करनेवाले साधुजन ये सब मंगल करें—सुख दें।

जो विचारशील शिव-सिद्धिके अर्थ इस निर्दोप चरित्रको पढ़ेंगे या दूसरोंको सुनावेंगे और जो इसे विधिपूर्वक सुनेंगे वे पुण्यसे अनन्तसुख प्राप्त करेंगे।

इस सुदर्शन चरित्रके श्लोकोंकी संख्या सब मिलाकर जोड़नेसे नौसौ (९००) है।

जैनचरितमाला।

इसमें जैनाचार्योंके बनाये अच्छे संस्कृत ग्रन्थ हिन्दी-भाषामें अनुवाद कराकर प्रकाशित किये जाते हैं। आठ आने प्रवेश फी जमा कराके स्थायी ग्राहक होनेवालेको इसके सब ग्रन्थ पौनी कीमतमें दिये जाते हैं। ग्रन्थ तैयार होते ही स्थाई ग्राहकोंको वी०पी० से भेज दिये जाते हैं। अबतक इसमें निम्न ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं:—

नेमि-पुराण।

इसमें बावीसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथ भगवान्का पवित्र चरित्र और राजकुमारी राजीमतीकी करुण-कथा बड़ी सुन्दरतासे लिखी गई है। पढ़ते पढ़ते हृदय भर आता है। प्रसङ्गवश इसमें कृष्ण और उनके वीर-पुत्र प्रद्युम्न कुमारका भी सुन्दर चरित्र लिख दिया गया है। एकबार पढ़ना आरंभ करनेपर फिर पूरा किये विना छोड़नेको मन नहीं चाहता। संस्कृत भाषासे हिन्दीमें बड़ा सरल अनुवाद हुआ है। कीमत सादी जिल्द दो रुपया। पक्की कपड़ेकी सवा दो रुपया।

सुदर्शन-चरित।

'शील' पालनेवालोंमें सुदर्शनका नाम विशेष उल्लेख योग्य है। सुदर्शन बड़ा ही दृढ़ निश्चयी था। कामी स्त्रियोंने उसपर बड़े बड़े घोर उपसर्ग किये, पर सुदर्शन उनसे बिल्कुल न डिगा। शीलके प्रभावसे, उसपर किया गया तलवारका वार मोतियोंका हार बन गया। देवतोंने उसको पूजा। शील धर्ममें दृढ़ करनेके लिए सुदर्शन-चरित बड़ा उत्तम ग्रन्थ है। संस्कृत परसे नया ही अनुवाद करके छपाया गया है। कीमत नौ आने।

चन्द्रप्रभ-चरित।

महाकवि-श्रीवीरनन्दि आचार्यकृत।

इसमें आठवें तीर्थंकर श्रीचन्द्रप्रभ भगवान्‌का पवित्र और मनोहर चरित लिखा गया है। संस्कृत साहित्यमें 'चन्द्रप्रभ-चरित' उच्च कोटिका काव्य है। इसमें प्रसंगानुसार श्रृंगार, वैराग्य, वीर, करुणा-आदि सभी रसोंका बड़ी खूबीके साथ वर्णन किया गया है। बड़ी ही मनोरंजनकी सामग्री है। अबतक यह केवल संस्कृत भाषामें ही था; पर एक महाकविके बनाये श्रेष्ठ काव्यकी सुन्दर और मनोमोहक वर्णन शैलीका रसपान हिन्दीके पाठक भी कर सकें, इसलिए हमने एक अच्छे विद्वान् द्वारा इसका हिन्दी अनुवाद कराकर प्रकाशित किया है। यह विद्यार्थियोंके लिए भी बड़े कामकी वस्तु बन गई है। इसके द्वारा वे मूलग्रन्थके भावोंको बड़ी सरलतासे समझ सकेंगे। अनुवाद बड़ा सुन्दर और सरल हुआ है। कीमत सादी जिल्दका १) रु० और कपड़ेकी पक्की जिल्दका १।) रु०।

भक्तामर-कथा—(मंत्रयंत्र सहित) इसमें पहले भक्तामरके मूल-श्लोक, फिर हिन्दी पद्यानुवाद, बाद मूलका खुलासा भावार्थ, फिर भक्तामरके मंत्रोंको सिद्ध करनेवालोंकी ३२ सुन्दर कथायें, इसके बाद अन्तमें मंत्र, ऋद्धि और उनकी साधनविधि तथा अड़तालीस ही श्लोकोंके अड़तालीस यंत्र, इस प्रकार योजना करके सर्व साधारणके लाभार्थ यह ग्रन्थ छपाया गया है। थोड़ीसी प्रतियाँ रही हैं। मूल्य सवा रु०।

सम्यक्त्व-कौमुदी—यह जैन-कथा-साहित्यका सुन्दर ग्रन्थ है। इसमें सम्यक्त्व प्राप्त करनेवालोंकी आठ मनोहर और धार्मिक

कथायें हैं। यह हिन्दीभाषामें अनुवाद होकर अभी ही प्रकाशित हुआ है। इसकी सरल और सुन्दर बोलचालकी. संस्कृत भाषाद्वारा विद्यार्थीगण भी लाभ उठा सकें, इसलिए इसे संस्कृत सहित छापा है। कीमत सादी जिल्द १=), कपड़ेकी पक्की जिल्दका १।=)।

नागकुमार-चरित—नागकुमार कैसा कर्त्तव्य-परायण पुरुष-रत्न था। कैसा परोपकारी और शूरवीर था। इस बातका बड़ी अच्छी तरहसे इस पुस्तकमें वर्णन है। कीमत छह आने।

यशोधर-चरित—इसमें यशोधर महाराजका चरित बड़ी सुन्दरतासे लिखा गया है। इसके पढ़नेसे हृदयमें करुणारसका प्रवाह बह उठता है। कीमत चार आना।

श्रेणिक-चरितसार—श्रेणिकचरितकी उत्तमता और उसकी कथाकी सुन्दरता सबपर प्रगट है। स्वल्प मूल्यमें सर्व साधारणके लाभार्थ हमने ब्रह्मचारी नेमिदत्तके संस्कृत 'श्रेणिकचरितसार' का यह हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया है। मूल्य तीन आना।

पवनदूत काव्य—उज्जैनके राजा विजयनरेशकी स्त्री सुताराको एक विद्याधर हरकर ले गया था। उसीके आधार पर यह रचा गया है। कीमत चार आने।

सुकुमाल-चरितसार—सुकुमाल कुअँरका चरित बड़ा सुन्दर है। उसीका सार यह है। कीमत डेढ़ आना।

इसके सिवा और सब प्रकारके जैनग्रन्थ हमारे यहाँ सदा बिक्रीके लिए तैयार रहते हैं। नीचे पतेसे मँगा लिया कीजिए।

पता—हिन्दी-जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय,
चन्दावाड़ी, गिरगाँव–बम्बई